वर्ष-10, अंक- 07, पृष्ठ- 8, मूल्य : 02 रुपये

TM

आधुनिक भारत का आधुनिक नजरिया

आधुनिक समाचार

प्रयागराज , बुधवार 06 मार्च, 2024

प्रयागराज से प्रकाशित हिन्दी दैनिक

Adhunik Samachar

संक्षिप्त समाचार

खेत में काम कर रहे भारतीय नागरिक पर आ गिरी मिसाइल

यरुशलम। इजरायल-हमास युद्ध के बीच सोमवार को इजरायल में हिजबुल्लाह के हमले में केरल के रहने वाले एक भारतीय नागरिक की मौत हो गई। इजरायल पर हिजबुल्लाह के मिसाइल हमले के दौरान केरल के रहने वाले एक भारतीय नागरिक की मौत हो गई। केरल के कोल्लम जिले के स्थानीय निवासी पैट निबिन मैक्सवेल, इजरायल की उत्तरी सीमा मार्गालियट के एक बगीचे में लेबनान के मिसाइल-रोधी हमले में मारे गए। अधिकारियों ने बताया कि इस हमले के कारण कम से कम दो अन्य लोग घायल हो गए।इजरायल-हमास युद्ध के बीच सोमवार को इजरायल में हिजबुल्लाह के हमले में केरल के रहने वाले एक भारतीय नागरिक की मौत हो गई। इजरायल पर हिजबुल्लाह के मिसाइल हमले के दौरान केरल के रहने वाले एक भारतीय नागरिक की मौत हो गई। केरल के कोल्लम जिले के स्थानीय

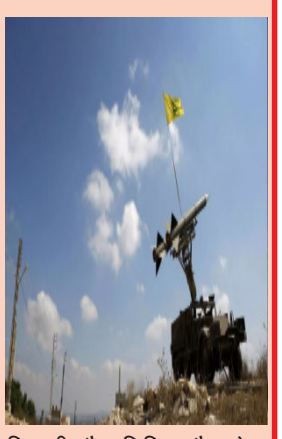

निवासी पैट निबिन मैक्सवेल इजरायल की उत्तरी सीमा मार्गालियट के एक बगीचे में लेबनान के मिसाइल-रोधी हमले में मारे गए।बचाव सेवा मैगन डेविड एडोम (एमडीए) के प्रवक्ता जकी हेलर ने पीटीआई को बताया कि मिसाइल ने सोमवार सुबह करीब 11 बजे इजरायल के उत्तर में गैलील क्षेत्र में मोशव (सामूहिक कृषि समुदाय) मार्गालियट में एक बागान पर हमला किया। जब मिसाइल ने इजरायली सीमा पर हमला किया तो मैक्सवेल बगीचे के पास थे। आधिकारिक सूत्रों ने पीटीआई को बताया कि उनके शव की पहचान जिव अस्पताल में की गई।

मैदान तुम चुनो, कार्यकर्ता हम चुनेंग

'मेड डे, नागपुर। स्मृति ईरानी ने राहुल गांधी को यूपीए शासन के 10 वर्षों और नरेंद्र मोदी सरकार के 10 वर्षों के कामकाज के बीच ठअंतरठ पर बहस करने की चुनौती दी है।नागपुर में नमो कार्यक्रम में बोलते हुए स्मृति ईरानी ने कहा कि अगर मेरी आवाज राहुल गांधी तक पहुंच रही है तो उन्हें कान खोलकर सुन लेना चाहिए। आपके (यूपीए) 10 साल और मोदी के 10 साल में क्या अंतर है इस पर चर्चा होनी चाहिए। भारतीय जनता युवा मोर्चा द्वारा युवा महासम्मेलन का आयोजन किया गया। स्मृति ईरानी ने राहुल गांधी को बहस की चुनौती दी।सोमवार को नागपुर में 'नमो' कार्यक्रम में बोलते हुए उन्होंने कहा, ठअगर मेरी आवाज राहुल गांधी तक पहुंच रही है, तो उन्हें कान खोलकर सुन लेना चाहिए। आपके (यूपीए) 10 साल और मोदी के 10 साल में क्या अंतर है, इस पर चर्चा होनी चाहिए। भारतीय जनता युवा मोर्चा द्वारा ' युवा महासम्मेलन ' का आयोजन किया गया।उन्होंने राहुल गांधी को बहस का निमंत्रण देते हुए कहा कि अगर मेरी आवाज राहुल गांधी तक पहुंच रही है तो उन्हें कान खोलकर सुनना चाहिए। आइए, इस पर बहस कर लें कि किसके दस साल बेहतर हैं।

केंद्रीय मंत्रियों, भाजपा नेताओं ने पार्टी फंड में दिया चंदा

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। विकसित भारत बनाने के प्रयासों को मजबूत करने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह द्वारा पार्टी फंड में दो-दो हजार रुपये का दान देने के एक दिन बाद केंद्रीय मंत्रियों सहित कई भाजपा नेताओं ने सोमवार को पार्टी फंड में योगदान दिया और लोगों से इस अभियान में शामिल होने का आग्रह किया विकसित भारत बनाने के प्रयासों को मजबूत करने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह द्वारा पार्टी फंड में दो-दो हजार रुपये का दान देने के एक दिन बाद केंद्रीय मंत्रियों सहित कई भाजपा नेताओं ने सोमवार को पार्टी फंड में योगदान दिया और लोगों से इस अभियान में शामिल होने का आग्रह कियापार्टी फंड में सोमवार को चंदा देने वालों में केंद्रीय मंत्री राजनाथ सिंह, एस जयशंकर और स्मृति इरानी शामिल हैं। अभियान के तहत रक्षामंत्री राजनाथ सिंह और विदेश मंत्री एस जयशंकर ने पार्टी फंड में दो-दो हजार रुपये दान देने के बाद चंदे की रसीद एक्स पर साझा की।उन्होंने लोगों से 'डोनेशन फॉर नेशन बिल्डिंग' यानी राष्ट्र निर्माण के लिए दान अभियान में योगदान देने का आग्रह किया। केंद्रीय मंत्री स्मृति इरानी ने एक हजार का योगदान देने के बाद एक्स पर दान की रसीद साझा कीं।

'मैं एक ही इरादे से काम करता हूं', प्रधानमंत्री मोदी ने तेलंगाना में 7000 करोड़ रुपये की परियोजनाओं का किया शिलान्यास

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

संगारेड्डी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने आज तेलंगाना संगारेड्डी में सात हजार करोड़ रुपये की परियोजनाओं का उद्घाटन, लोकार्पण और शिलान्यास किया। कार्यक्रम में शिरकत करते हुए पीएम मोदी ने कहा, पिछले 10 वर्षों में केंद्र सरकार ने तेलंगाना को नए मील के पत्थर हासिल करने में मदद करने के लिए कड़ी मेहनत की है।पीएम मोदी ने आज 7000 करोड़ रुपये की विकास परियोजनाओं का लोकार्पण और शिलान्यास किया। परियोजनाओं का शिलान्यास करने के बाद पीएम मोदी ने कहा कि तेलंगाना को दक्षिण भारत का प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। रेलवे के विद्युतीकरण पर काम किया जा रहा है। 6 नए स्टेशन भी बनाए गए हैं। इन विकासों का तेलंगाना और आसपास के क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।आज मुझे 7000 करोड़ रुपये की विकास परियोजनाओं का लोकार्पण और शिलान्यास करने का अवसर मिला। मैं केवल एक ही इरादे से काम करता हूं- राष्ट्र के विकास के लिए राज्यों का विकास।उन्होंने आगे कहा,आज 140 करोड़ देशवासी विकसित भारत के निर्माण के लिए संकल्पित हैं। और विकसित भारत के लिए आधुनिक आर्किटेक्चर का होना बहुत जरूरी है। इसलिए इस साल के बजट में 11 लाख करोड़ रुपये का उल्लेख किया गया है। हमारा प्रयास है कि तेलंगाना को ज्यादा से ज्यादा फायदा मिले।पीएम मोदी ने कहा,ठतेलंगाना को 'दक्षिण भारत का प्रवेश द्वार' कहा जा सकता है। रेलवे के विद्युतीकरण पर काम किया जा रहा है। 6 नए स्टेशन भी बनाए गए हैं। इन विकासों का तेलंगाना और आसपास के क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।ठउन्होंने कहा,ठपिछले 10 वर्षों में हवाई अड्डों की संख्या दोगुनी हो गई है। 140 करोड़ भारतीयों ने विकसित भारत का संकल्प लिया है।

बेटे की कातिल स्टार्टअप कंपनी की सीईओ की होगी मानसिक जांच, सूचना सेठ को जनवरी में किया गया था गिरफ्तार

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

पणजी। गोवा की अदालत ने आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस (एआइ) स्टार्टअप कंपनी की सीईओ सूचना सेठ (39) के पिता को चिकित्सकों के बोर्ड से बेटी के मानसिक स्वास्थ्य की जांच कराने के आवेदन को अनुमति दे दी। पति के साथ तलाक विवाद में फंसी सूचना सेठ पर गोवा की यात्रा के दौरान कैंडोलिम स्थित सर्विस अपार्टमेंट में अपने चार वर्षीय पुत्र की हत्या करने का आरोप है।पति के साथ तलाक विवाद में फंसी सूचना सेठ पर गोवा की यात्रा के दौरान कैंडोलिम स्थित सर्विस अपार्टमेंट में अपने चार वर्षीय पुत्र की हत्या करने का आरोप है। उसे गत आठ जनवरी को कर्नाटक के चित्रदुर्ग जिले से बैग में बेटे के शव के साथ गिरफ्तार किया गया था।

महिलाओं को दिल्ली में हर माह 1000 और हिमाचल में मिलेंगे 1500 रुपय

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। लोकसभा चुनाव की तैयारियों में जुटी आम आदमी पार्टी ने दिल्ली सरकार के बजट में महिलाओं को प्रति माह एक हजार रुपये सम्मान राशि देने की घोषणा की है। मुख्यमंत्री महिला सम्मान योजना के तहत राजधानी में 18 वर्ष और उससे अधिक उम्र की उन महिलाओं को यह सम्मान राशि मिल सकेगी, जिनके पास दिल्ली का आधार और मतदाता पहचान पत्र होगा। सरकारी नौकरी, सरकारी पेंशन और आय कर के दायरे में आने वाली महिलाएं इस सुविधा से बाहर होंगी। मुख्यमंत्री महिला सम्मान योजना के तहत राजधानी में 18 वर्ष और उससे अधिक उम्र की उन महिलाओं को यह सम्मान राशि मिल सकेगी जिनके पास दिल्ली का आधार और मतदाता पहचान पत्र होगा। सरकारी नौकरी सरकारी पेंशन और आय कर के दायरे में आने वाली महिलाएं इस सुविधा से बाहर होंगी। उधर हिमाचल प्रदेश में भी इंदिरा गांधी प्यारी बहना सुख सम्मान निधि योजना लागू की गई।उधर, हिमाचल प्रदेश की कांग्रेस सरकार ने विधानसभा चुनाव में की घोषणा को अमल लाते हुए इंदिरा गांधी प्यारी बहना सुख सम्मान निधि योजना लागू कर दी।

इंडिया ब्लॉक के विस्तार से हो रही चिढ़

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। कांग्रेस ने सोमवार को सोशल मीडिया प्रोफाइल पर अपने नाम के साथ ठमोदी का परिवारठ जोड़ने वाले नेताओं के अभियान को लेकर भाजपा पर कटाक्ष किया। कांग्रेस ने बीजेपी पर आरोप लगाते हुए कहा कि वे लोगों को वास्तविक मुद्दों से ठगुमराहठ कर रहे हैं और ऐसी रणनीति अपना रहे हैं क्योंकि 'इंडिया ब्लॉकठ का गठबंधन बढ़ रहा हैठ।पीएम मोदी ने आगामी लोकसभा चुनाव को देखते हुए एक नया चुनावी नारा दिया है। नारा है मोदी का परिवार इस नारे को लेकर बीजेपी के नेता अब अपने सोशल मीडिया पर अपने नाम के साथ यह नारा जोड़ रहे हैं।इस नारे पर अब कांग्रेस ने पलटवार किया है।कांग्रेस का कहना है कि गठबंधन लगातार मजबूत हो रहा है और इसी कारण से भाजपा ध्यान भटकाओ अभियानचला रही है।बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव ने 'परिवारवाद' को लेकर भाजपा और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पर तंज कसा था। जिसके बाद पीएम मोदी ने लालू के बयान पर पलटवार करते हुए एक नया चुनावी नारा दे दिया। पीएम मोदी ने 'मोदी मेरा परिवार' नारा दिया, जिसे तमाम पार्टी के नेताओं ने अपने सोशल मीडिया हैंडल के प्रोफाइल में लिख रहे हैं।

न हाथ न चरखा, इस नए सिंबल पर इंदिरा गांधी ने लड़ा था चुनाव

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। आजाद भारत के पांचवे आम चुनाव ने देश में चुनावी प्रक्रिया की रूप-रेखा बदल दी। लोकसभा चुनाव 1971 में इंदिरा गांधी की राजनीतिक शक्ति को देश ने देखा था। जब इंदिरा गांध की नेतृत्व वाली कांग्रेस ने लोकसभा की 545 सीटों में 352 सीटें जीतीं थीं। वहीं, कांग्रेस (ओ) को 16 सीटें मिली थी।1971 यह पहला मध्यावधि चुनाव था। 1951-1952 में स्वतंत्र भारत में पहली बार एकसाथ लोकसभा और विधानसभा चुनाव कराए गए। यह प्रथा 1960 के अंत तक जारी रही। चुनाव की तारीखों को एक साल के लिए आगे बढ़ाने की वजह से राष्ट्रीय व राज्य अनुसूचियो को अलग कर दिया क्योंकि कई विधानसभाओं का कार्यकाल अभी समाप्त नहीं हुआ था।इस चुनाव में कांग्रेस पार्टी दो भागों में बंट गई थी। सिंडिकेट ने इंदिरा गांधी को बाहर का रास्ता दिखा दिया था। इंदिरा ने भी कांग्रेस के बुजुर्ग नेताओं के खिलाफ मोर्चा खोलते हुए कांग्रेस (आई) के नाम चुनाव लड़ा।यह पहला मध्यावधि चुनाव था। 1951-1952 में स्वतंत्र भारत में पहली बार एकसाथ लोकसभा और विधानसभा चुनाव कराए गए। यह प्रथा 1960 के अंत तक जारी रही।

पाकिस्तान ने भारतीय तीर्थयात्रियों के लिए 112 वीजा जारी किए

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के चकवाल जिले में स्थित श्री कटास राज मंदिरों की यात्रा को सुविधाजनक बनाने के लिए भारत के तीर्थयात्रियों के समूह को 112 वीजा जारी किए। पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के चकवाल जिले में स्थित श्री कटास राज मंदिरों की यात्रा को सुविधाजनक बनाने के लिए भारत के तीर्थयात्रियों के समूह को 112 वीजा जारी किए। धार्मिक स्थलों की यात्रा के द्विपक्षीय प्रोटोकाल के अंतर्गत प्रतिवर्ष भारत से हिंदू और सिख तीर्थयात्री पाकिस्तान जाते हैं और पाकिस्तानी तीर्थयात्री भी इसके तहत भारत आते हैं।धार्मिक स्थलों की यात्रा के द्विपक्षीय प्रोटोकाल के अंतर्गत प्रतिवर्ष भारत से हिंदू और सिख तीर्थयात्री पाकिस्तान जाते हैं और से 12 मार्च तक श्री कटास राज मंदिरों की यात्रा करेंगे।इसे किला कटास के नाम से भी जाना जाता है। गत वर्ष दिसंबर में पाकिस्तान ने श्री कटास राज मंदिरों की यात्रा के लिए भारतीय तीर्थयात्रियों को 62 वीजा जारी किए थे।

पाकिस्तानी तीर्थयात्री भी इसके तहत भारत आते हैं।पाकिस्तान उच्चायोग के प्रभारी साद अहमद वाराइच ने तीर्थयात्रियों की सुरक्षित सुरक्षित यात्रा की शुभकामनाएं देते हुए बताया कि तीर्थयात्री छह मार्च

रिजर्व बैंक के एक्शन के बाद फाईनेन्स का शेयर बेचने की होड़

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। रिजर्व बैंक ने सोमवार कोके नए गोल्ड लोन मंजूर करने या बांटने पर तशत्काल प्रभाव से रोक लगा दी थी। की इस सख्ती ने के निवेशकों के भरोसे को बुरी तरह हिला दिया है।रिजर्व बैंक ने सोमवार को खिलाफ कड़ा एक्शन लिया था और कंपनी के नए लोन बांटने पर रोक लगा दी थी। बैंकिंग रेगुलेटर को सोने के वजन और शुद्धता से जुड़ी गड़बड़ियां मिली थीं। रिजर्व बैंक की पाबंदियों ने के निवेशकों का भरोसा हिला दिया। कंपनी के शेयर में आज 20 प्रतिशत का लोअर सर्किट लगा। जानिए इसके शेयरों में आगे क्या होगा आज यानी मंगलवार को शेयर बाजार खुलते फाइनेंस के स्टॉक में 20 प्रतिशत का लोअर सर्किट लगा और 119.40 रुपये गिरकर 477.75 रुपये पर आ गया। सोमवार को आरबीआई के एक्शन से पहले इसमें 3.94 फीसदी की गिरावट आई थी।

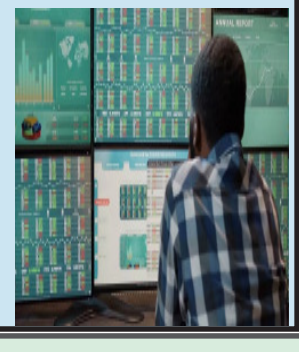

गुजरात में राहुल की न्याय यात्रा की एंट्री से पहले कांग्रेस को झटका

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

गांधीनगर। लोकसभा चुनाव से पहले गुजरात कांग्रेस को बड़ा झटका लगा है। पोरबंदर से विधायक, पूर्व प्रदेश अध्यक्ष और एमएलए अर्जुन मोढवाडिया ने आज भाजपा का दामन थाम लिया है। उन्होंने सोमवार (05 फरवरी) को कांग्रेस से इस्तीफा दिया था।पूर्व प्रदेश अध्यक्ष और एमएलए अर्जुन मोढवाडिया आज भाजपा में शामिल हुए। उन्होंने सोमवार को कांग्रेस से इस्तीफा दिया था। कांग्रेस से इस्तीफे के बाद अर्जुन मोढवाडिया ने कहा कि जब कोई पार्टी जनता से अपना जुड़ाव खो देती है तो वह ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाती। देश की जनता चाहती थी कि राम मंदिर का निर्माण हो।वो गांधीनगर में आयोजित एक कार्यक्रम में हिस्सा लेते हुए भाजपा में शामिल हुए। राजुला के पूर्व विधायक अंबरीश डेर भी भाजपा में शामिल हुए। उन्होंने भी कल (3 फरवरी) कांग्रेस से इस्तीफा दिया था। ये सभी नेता आज गांधीनगर के भाजपा दफ्तर 'कमलकम' में औपचारिक रूप से भाजपा में शामिल हुए। कांग्रेस से इस्तीफे के बाद अर्जुन मोढवाडिया

प्रदेश अध्यक्ष और एमएलए अर्जुन मोढवाडिया ने आज भाजपा का दामन थाम लिया है। उन्होंने सोमवार (05 फरवरी) को कांग्रेस से इस्तीफा दिया था।पूर्व प्रदेश अध्यक्ष और एमएलए अर्जुन मोढवाडिया आज भाजपा में शामिल हुए। उन्होंने सोमवार को कांग्रेस से इस्तीफा दिया था। कांग्रेस से इस्तीफे के बाद अर्जुन मोढवाडिया ने कहा कि जब कोई पार्टी जनता से अपना जुड़ाव खो देती है तो वह ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाती। देश की जनता चाहती थी कि राम मंदिर का निर्माण हो।वो गांधीनगर में आयोजित एक कार्यक्रम में हिस्सा लेते हुए भाजपा में शामिल हुए। राजुला के पूर्व विधायक अंबरीश डेर भी भाजपा में शामिल हुए। उन्होंने भी कल (3 फरवरी) कांग्रेस से इस्तीफा दिया था। ये सभी नेता ने कहा कि जब कोई पार्टी जनता से अपना जुड़ाव खो देती है तो वह ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाती। देश की जनता चाहती थी कि राम मंदिर का निर्माण हो। कांग्रेस ने भी तय किया था कि सुप्रीम कोर्ट से संवैधानिक फैसला आने के बाद हम इसका समर्थन करेंगे। फिर भी प्राण प्रतिष्ठा का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया गया।अर्जुन ने कहा कि मैंने तब भी आवाज उठाई थी कि इससे जनता की भावना आहत होगी और हमें ऐसे राजनीतिक फैसले नहीं लेने चाहिए और उस फैसले से लोगों के साथ जुड़ाव की कमी का पता चलता है। मैंने कई अन्य मामलों में भी अपनी बात पहुंचाने की कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सका। आखिरकार, मैंने आज इस्तीफा देने का फैसला किया।

कर्नाटक विधानसभा परिसर में पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे लगाने पर तीन गिरफ्तार

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

बेंगलुरु। कर्नाटक में विधानसभा परिसर में पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे लगाने के आरोप में तीन लोगों को गिरफ्तार किया गया है। इनमें एक आरोपित बेंगलुरु, दूसरा हावेरी और तीसरा दिल्ली का रहने वाला है। राज्यसभा चुनाव में जीत के बाद कांग्रेस नेता सैयद नसीर हुसैन के समर्थकों ने कथित तौर पर 27 फरवरी को यह नारा लगाया था।सोमवार को कर्नाटक भाजपा ने निजी फोरेंसिक लैब (एफएसएल) की रिपोर्ट का हवाला दिया जिसमें संकेत है कि पाकिस्तान जिंदाबाद का नारा लगाया गया था। इसके बाद से ही विवाद शुरू हो गया है। कर्नाटक के गृहमंत्री ने कहा है कि निजी रिपोर्ट पर विचार नहीं किया जा सकता। रिपोर्ट पर सवाल उठाए जाने के बाद भाजपा का प्रतिनिधिमंडल डीजीपी आलोक मोहन से मिला।सोमवार को कर्नाटक भाजपा ने निजी फोरेंसिक लैब (एफएसएल) की रिपोर्ट का हवाला दिया, जिसमें संकेत है कि पाकिस्तान जिंदाबाद का नारा लगाया गया था। इसके बाद से ही विवाद शुरू हो गया है। कर्नाटक के गृहमंत्री ने कहा है कि निजी रिपोर्ट पर विचार नहीं किया जा सकता।

केरल में जंगली हाथी के हमले से एक और महिला की मौत

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

कोच्चि। केरल के एर्नाकुलम जिले में सोमवार को जंगली हाथी ने एक और महिला को कुचलकर मार डाला। घटना की जानकारी पर लोगों का गुस्सा भड़क उठा और उन्होंने शव के साथ प्रदर्शन किया। काफी नोकझोंक के बाद पुलिस ने शव को पोस्टमार्टम के लिए भेजा। केरल में पिछले पांच सप्ताह में जंगली हाथियों के हमले से यह पांचवीं मौत है।एर्नाकुलम के कोठामंगलम शहर के कांजीरवेली क्षेत्र में सोमवार सुबह इंदिरा रामकृष्णन (70) पर जंगली हाथी ने हमला कर दिया। वह वन क्षेत्र स्थित रबर बागान में काम कर रहे पति को नाश्ता देने जा रही थी। उसकी चीखें सुनकर आसपास के लोग पहुंच गए और आनन-फानन उसे अस्पताल ले जाया गया लेकिन उसकी मौत हो चुकी थी।घटना की जानकारी पर कांग्रेस विधायक मैथ्यू कुझालनदान और इडुक्की सांसद डीन कुरियाकोस के नेतृत्व में सैकड़ों लोगों ने प्रदर्शन शुरू कर दिया। लोग महिला के शव को मोर्चरी से जबरन निकाल लाए और पोस्टमार्टम के लिए देने से इन्कार करने लगे। पीड़ित परिवार ने जंगली जानवरों के खतरे की समस्या को हल कराने के बाद पोस्टमार्टम कराने की बात कही। इस दौरान पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच जमकर नोकझोंक हुई।

बिजली की छापेमारी पर अब होगी तीसरी आंख की नजर बॉडी वार्न कैमरे से लैस होगी जांच टीमें

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

प्रयागराज।प्रयागराज में प्रवर्तन दल की दो टीमें अलग-अलग छापेमारी की कार्रवाई करती हैं। पिछले एक सालों में दर्जनों बार विजलेंस की टीम के साथ मारपीट की घटनाएं हुई हैं। वहीं, कई बार उपभोक्ताओं

के घर चेकिंग करने पहुंची टीम कटियामारी या बिजली चोरी के अन्य तरीकों को साक्ष्य के रूप में पूरी तरह रिकॉर्ड नहीं कर पाती हैं।बिजली चोरी रोकने या पकड़ने के लिए विजलेंस टीम की छापेमारी पर अब तीसरी आंख की नजर होगी। टीम की छापेमारी की पूरी गतिविधियां अब कैमरे में रिकॉर्ड होंगी। उत्तर प्रदेश पॉवर कारपोरेशन प्रबंधन ने इस संबंध में बड़ा निर्णय लेते हुए जांच टीमों को बॉडी वार्न कैमरे से लैस करने का निर्णय लिया है। अब जांच दल की छापेमारी की पूरी कार्रवाई पर कंट्रोल रूम से निगाह रखी जा सकेगी। इससे उपभोक्ताओं की ओर से लगाए जा रहे आरोपों से विजलेंस की टीम को राहत तो मिलेगी ही, साथ ही प्रवर्तन दल के साथ हो रही मारपीट व विवादों की घटनाएं भी कैमरे में साक्ष्य के रूप में रिकॉर्ड हो जाएंगी।प्रयागराज में प्रवर्तन दल की दो टीमें अलग-अलग छापेमारी की कार्रवाई करती हैं। पिछले एक सालों में दर्जनों बार विजलेंस की टीम के साथ मारपीट की घटनाएं हुई हैं। वहीं, कई बार उपभोक्ताओं के घर चेकिंग करने पहुंची टीम कटियामारी या बिजली चोरी के अन्य तरीकों को साक्ष्य के रूप में पूरी तरह रिकॉर्ड नहीं कर पाती हैं। बाद में विवेचना के दौरान इसका फायदा बिजली चोरी करने वाले उपभोक्ताओं को मिलता है। जानकारी के मुताबिक बॉडी वार्न कैमरे में जीपीएस लोकेशन से लेकर ऑडियो-वीडियो सब स्वतः रिकॉर्ड होंगे।इस रिकॉर्डिंग से छापेमारी के दौरान विजलेंस टीम के साथ हो रही सभी घटनाओं के साक्ष्य एकत्रित हो जाएंगे। कैमरे की नजर में हो रही छापेमारी से उपभोक्ताओं के मन में तो भय पैदा ही होगा, साथ ही भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगेगा। जानकारी के मुताबिक विजलेंस की टीम को जल्द ही यह बॉडी वार्न कैमरे मिल जाएगा।

ऑनलाइन गेम की लत किशोर ने खिलाड़ी के उड़ाए 70 हजार

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

प्रयागराज।इन दिनों मोबाइल पर बच्चों के गेम खेलने की लत उन्हें अपना शिकार बन रही है। कोई चोरी कर रहा तो कोई आत्महत्या

कर रहा है।ऑनलाइन गेम बच्चों के दिलोदिमाग पर हावी है। पढ़ाई-लिखाई में बिल्कुल मन नहीं लग रहा है। ऐसी लत देखने को मिल रही है कि इसके लिए कोई खाते से पैसे उड़ा दे रहा तो कोई आत्महत्या का भी प्रयास कर रहा है। यह हम नहीं, बल्कि मोती लाल नेहरू मंडलीय चिकित्सालय (कॉल्विन) के मन कक्ष व स्वरूप रानी नेहरू चिकित्सालय (एसआरएन) के मनोरोग विभाग में हर माह 30 से अधिक आ रहे मामले बयां कर रहे हैं। मोबाइल छीनने पर वह कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। चिकित्सकों का कहना है कि इससे सबसे ज्यादा 10 से 12 वर्ष के बच्चे प्रभावित हैं। कुछ ऐसे ही मामले नजीर के तौर पर हैं।प्रीतमनगर निवासी 13 वर्षीय किशोर ऑनलाइन गेम का शौकीन था। गेम के तीसरे स्टेज पर अपने खिलाड़ी को वर्दी और बंदूक दिलाने के लिए 70 हजार रुपये की आवश्यकता पड़ी।

हाईकोर्ट ने आजमगढ़ के गैंगस्टर की पत्नी की अपील को किया खारिज

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

प्रयागराज।इलाहाबाद हाईकोर्ट से आजमगढ़ के गैंगस्टर राजेंद्र यादव की पत्नी मीना देवी को तगड़ा झटका लगा है। कोर्ट ने कहा है कि जब पत्नी के पास आय का स्रोत नहीं है तो वह संपत्ति कैसे खरीद सकती है। याची के पास ऐसा कोई ठोस तथ्य या रिकॉर्ड नहीं है कि कुर्क संपत्ति किसी अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गई थी।न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव की पीठ ने मामले में डीएम आजमगढ़ की कार्रवाई को सही मानते हुए विशेष न्यायालय गैंगस्टर के आदेश को सही माना और मीना देवी की अपील को खारिज कर दिया।याची ने आजमगढ़ के विशेष न्यायालय गैंगस्टर के आदेश को चुनौती दी थी। विशेष न्यायालय ने याची की अपील को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि उसके पास आय का कोई जरिया नहीं है। लिहाजा, पति की ओर से ही उसके नाम संपत्ति लिखाई गई है।याची ने उसे हाईकोर्ट में चुनौती दी थी। मामले में डीएम आजमगढ़ ने गैंगस्टर के खिलाफ कार्रवाई करते हुए उसकी पत्नी/याची की दो संपत्तियों को भी संलग्न कर दिया था। याची ने डीएम की इस कार्रवाई पर आपत्ति

जताई, लेकिन डीएम ने उसे खारिज कर दिया। इसके बाद याची ने विशेष सत्र न्यायाधीश गैंगस्टर आजमगढ़ के समक्ष गुहार लगाई, लेकिन वहां से भी उसे झटका लगा।याची ने गैंगस्टर कोर्ट के आदेश को हाईकोर्ट में चुनौती दी। याची की ओर से कहा गया कि उसने अपनी मेहनत की कमाई से दोनों संपत्ति खरीदी है। विरोधी पक्ष के अधिवक्ता नितेश कुमार श्रीवास्तव ने इसका विरोध किया। कहा, याची के पास पति के अलावा आय का कोई स्रोत नहीं है।कोर्ट ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद कहा, याची की जो संपत्तियां कुर्क की गईं, वह याची के पति गैंगस्टर राजेंद्र यादव की ओर से अपनी पत्नी के नाम पर लिखाई गईं थीं।

घर से दो सौ मीटर दूर खेत में मिला कक्षा तीन के छात्र का शव

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

प्रयागराज।असरवई गांव निवासी होरीलाल का पुत्र प्रद्युम्न (12) गांव के ही प्राथमिक विद्यालय में कक्षा तीन में पढ़ता था। वह दो भाइयों में छोटा था। रविवार की शाम को सात बजे वह घर से निकला था, लेकिन उसके बाद वापस नहीं लौटा।बारा थाना क्षेत्र के ग्राम पंचायत असरवई में रविवार की रात एक किशोर की हत्या कर शव खेत में फेंक दिया गया। सोमवार की सुबह शव मिलने के बाद परिवार में कोहराम मच गया है। परिजनों ने बारा पुलिस को गांव के ही एक व्यक्ति को नामजद करते हुए तहरीर दी है।क्षेत्र के असरवई गांव निवासी होरी लाल का बारह वर्षीय पुत्र प्रदुम गांव के ही प्राथमिक विद्यालय में कक्षा तीन का छात्र था। परिजनों के अनुसार

वह रविवार शाम लगभग सात बजे घर से निकला था। देर रात तक वापस नहीं लौटने पर उसे आसपास खोजने का प्रयास किया गया किन्तु पता नहीं चला। सोमवार सुबह घर से लगभग दो सौ मीटर की दूरी पर एक खेत में उसकी लाश मिली। सूचना मिलते ही एसीपी बारा संत लाल सरोज एवं बारा पुलिस मौके पर पहुंची।पुलिस ने शव को कब्जे में ले कर पोस्टमार्टम के लिए प्रयागराज भेज दिया है। किशोर का शव मिलते ही परिजनों में मातम छा गया। परिजनों ने गांव के ही एक व्यक्ति पर हत्या का आरोप लगाते हुए बारा पुलिस को तहरीर दी है। प्रदुम दो भाइयों में छोटा था। इस संबंध में इंस्पेक्टर बारा विनोद कुमार ने बताया कि मृतक का पिता होरी लाल गांव के ही भोला बिंद पर आरोप लगाते हुए तहरीर दी है।

मोटापे की वजह से 10 से 16 वर्ष के बच्चे भी हो रहे मधुमेह के शिकार

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

प्रयागराज।लोग जंक फूड पिज्जा, बर्गर, चाऊमीन व अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थों को मानते हैं। जबकि, जंक फूड की श्रेणी में बिस्कुट, नमकीन और टोस्ट भी आता है। एसआरएन अस्पताल में हर माह पांच से छह केस इस प्रकार के आ रहे हैं। वहीं, निजी अस्पतालों में भी स्थिति ऐसी ही देखने को मिल रही है।विश्व मोटापा दिवस सोमवार को है। इस बार की थीम आइए मोटापे पर खुलकर बात करें रखी गई है। मोटापे की वजह से बीपी, शुगर, सांस से संबंधित बीमारी व अन्य प्रकार की समस्याएं जन्म लेती हैं। लेकिन, अब 10 व 12 वर्ष के बच्चे भी इसकी वजह से टाइप टू मधुमेह की चपेट में आ रहे हैं। इसके पीछे सबसे बड़ी वजह से जंक फूड बताई जा रही है।लोग जंक फूड पिज्जा, बर्गर, चाऊमीन व अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थों को मानते हैं। जबकि, जंक फूड की श्रेणी में बिस्कुट, नमकीन और टोस्ट भी आता है। एसआरएन अस्पताल में हर माह पांच से छह केस इस प्रकार के आ रहे हैं। वहीं, निजी अस्पतालों में भी स्थिति ऐसी ही देखने को मिल रही है।प्रीतम नगर निवासी 15 वर्षीय एक किशोर का वजन 75 किलो था। इसकी वजह से उसे सांस लेने में दिक्कत हो रही थी। वहीं, मुंडेरा स्थित नारायण स्वरूप अस्पताल में जब उसे लाया गया तो जांच में पता चला कि उसका शुगर लेवल 500 के ऊपर है। ऐसे में उसे तुरंत भर्ती करना पड़ा।

घर से दो सौ मीटर दूर खेत में मिला कक्षा तीन के छात्र का शव

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

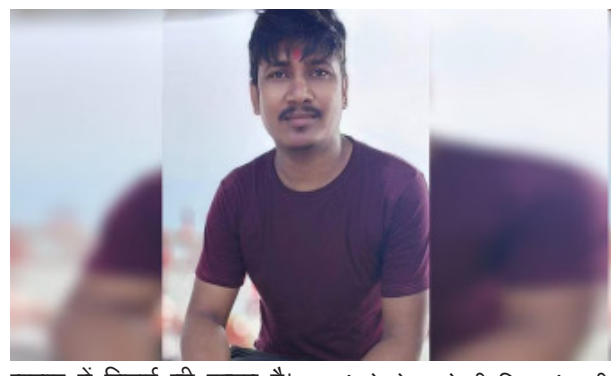

प्रयागराज।इरादतगंज बाजार निवासी विद्याकांत यादव (25) पुत्र सोहनलाल यादव की बाजार में मिठाई की दुकान है। रविवार को सायं विद्याकांत ने घर पर ही जहरीला पदार्थ निगल लिया। कुछ देर बाद उसकी हालत बिगड़ने पर जानकारी हुई तो इलाज के लिए अस्पताल लेकर भागे। अस्पताल पहुंचने से पहले ही विद्याकांत की मौत हो गई।घूरपुर थाना क्षेत्र के इरादतगंज बाजार निवासी एक मिठाई कारोबारी ने जहरीला पदार्थ निगल कर जान दे दी। परिजनों के अनुसार कारोबारी ने सूदखोरों की प्रताड़ना से आजिज आकर आत्मघाती कदम उठाया है। पिता ने दो लोगों के विरुद्ध नामजद शिकायत थाने में की है।इरादतगंज बाजार निवासी विद्याकांत यादव (25) पुत्र सोहनलाल यादव की

बाजार में मिठाई की दुकान है। रविवार को सायं विद्याकांत ने घर पर ही जहरीला पदार्थ निगल लिया। कुछ देर बाद उसकी हालत बिगड़ने पर जानकारी हुई तो इलाज के लिए अस्पताल लेकर भागे। अस्पताल पहुंचने से पहले ही विद्याकांत की मौत हो गई। परिजन शव लेकर घर पहुंचे तो कोहराम मच गया। खो दिया।

मुख्यमंत्री ने सहारनपुर, मीरजापुर, बांदा, बस्ती, अमरोहा और फिरोजाबाद की महायोजना-2031 के प्रस्तुतिकरण का अवलोकन किया

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

मीरजापुर।उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी ने आज अपने सरकारी आवास पर जनपद सहारनपुर, मीरजापुर, बांदा, बस्ती, अमरोहा और फिरोजाबाद की महायोजना-2031 का प्रस्तुतिकरण का अवलोकन किया और नियोजित विकास के लिए सम्बन्धित अधिकारियों को आवश्यक दिशा-निर्देश दिए। उन्होंने कहा कि विकास प्राधिकरणों का उद्देश्य सुनियोजित, संतुलित और तीव्र विकास को दिशा देना है। आम आदमी की सुविधा पर फोकस किया जाए। सभी विकास प्राधिकरणों को आय की नई सम्भावनाएं तलाशनी होंगी।मुख्यमंत्री जी ने कहा कि स्थानीय शिल्पकला और परम्परागत उत्पादों को प्रोत्साहित करने के लिए क्लस्टर विकसित किये जाएं। प्रतिमाओं की स्थापना चैराहों के स्थान पर पार्कों में करना उचित होगा। नगरों में यातायात प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण विषय है। हमें इसके लिए ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है। टैक्सी-ऑटो स्टैण्ड और स्ट्रीट वेण्डर जोन तय होने चाहिए। महायोजना में इसके लिए स्पष्ट भूमि चिन्हित की जाए। मल्टीलेवल पार्किंग के लिए उपयुक्त स्थान निर्धारित करें।मुख्यमंत्री जी ने कहा कि सहारनपुर 'देवभूमि का प्रवेश द्वार' है। विगत 06-07 वर्षों में यहां न केवल व्यावसायिक गतिविधियों में तेजी आई है, बल्कि बेहतर होती कनेक्टिविटीऔर नगरीय सुविधाओं के कारण लोग यहां स्थायी निवास भी बना रहे हैं। सहारनपुर की महायोजना में

औद्योगिक-व्यावसायिक और आवासीय गतिविधियों के विकास के लिए सुनियोजित प्राविधान रखे जाएं। सहारनपुर में वुड कार्विंग क्लस्टर के लिए स्थान चिन्हित करें। वर्तमान में जहां काष्ठ शिल्प का हब है, यह स्थान उससे बहुत दूर नहीं होना चाहिए। लॉजिस्टिक्स नवस्थापित मेडिकल कॉलेज और राज्य विश्वविद्यालय को भी महायोजना में शामिल करें। भविष्य के मीरजापुर की आवश्यकताओं के दृष्टिगत मीरजापुर के विकास क्षेत्र का दायरा और अधिक बढ़ाया जाना चाहिए। जनपद बस्ती विकास की ओर तेजी से अग्रसर हो रहा है। यहां चीनी मिल तथा मेडिकल कॉलेज स्थापित हैं। महायोजना-2031 के दायरे में इन्हें भी लाया जाना उचित होगा। विकास नियोजित और संतुलित हो, इसके लिए विशेष ध्यान देना होगा।मुख्यमंत्री जी ने कहा कि जनपद अमरोहा के लिए पहली बार महायोजना तैयार हो रही है। ढोलक, ड्रम, कॉटन रिसाइकिलिंग और बिन्दी बनाने जैसी गतिविधियां यहां की परम्परा का हिस्सा हैं। इन्हें और अधिक फैसिलिटेट करने की व्यवस्था की जाए। जनपद बांदा में इंडस्ट्रियल कॉरिडोर प्रस्तावित है। महायोजना की सीमा कॉरिडोर तक होनी चाहिए। इससे बुन्देलखण्ड एक्सप्रेस-वे को जोड़ा जाए। हैवी ट्रैफिक से नगर का आम यातायात प्रभावित न हो, इसके लिए ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है।

1.5 करोड़ किसानों को योगी सरकार का होली गिफ्ट, निजी नलकूप पर 100 प्रतिशत बिजली बिल माफ

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

लखनऊ।मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की अध्यक्षता में यूपी कैबिनेट ने बड़ा निर्णय लिया है। अब किसानों को निजी नलकूप पर बिजली का बिल नहीं देना होगायोगी सरकार ने प्रदेश के करोड़ों किसानों को होली से पहले ही बड़ा तोहफा प्रदान किया है। मंगलवार को सीएम योगी की अध्यक्षता में हुई कैबिनेट बैठक में सरकार ने बड़ा निर्णय लेते हुए किसानों के निजी नलकूपों पर बिजली बिल में 100 प्रतिशत तक की छूट दे दी है। इस निर्णय से प्रदेश के 1.5

करोड़ किसानों को सीधा लाभ मिलेगा। इस योजना के तहत किसानों को एक अप्रैल 2023 से निजी नलकूप पर कोई भी बिल देने की आवश्यकता नहीं होगी। यही नहीं, यदि इसके पहले का भी यदि कोई बिल बकाया है तो सरकार उसके लिए ब्याज रहित और आसान किस्तों में बिल चुकाने के लिए योजना लाएगी।

कांग्रेस प्रदेश अध्यक्ष बोले- वोट बैंक के लिए राजभर और दारा सिंह चौहान को बनाया जा रहा मंत्री

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

लखनऊ।कांग्रेस प्रदेश अध्यक्ष अजय राय ने कहा कि भाजपा ओम प्रकाश राजभर व दारा सिंह चौहान के समाज का वोट लेने के लिए उन्हें मंत्री बना रही है। लोकसभा चुनाव में भाजपा की स्थिति कमजोर है इसलिए इस तरह की कोशिशें की जा रही हैं कांग्रेस प्रदेश अध्यक्ष अजय राय ने योगी सरकार के दूसरे कार्यकाल के पहले मंत्रिमंडल

विस्तार पर कहा कि ओम प्रकाश राजभर और दारा सिंह चौहान के समाज के लोगों का वोट लेने के लिए इन्हें मंत्री बनाया जा रहा है। इन्हें पहले क्यों नहीं बनाया गया जब ये लोग अपने समाज को लाभ दिलाने की स्थिति में थे। अब चुनाव आ रहा है तो मंत्री बनाया जा रहा है।प्रदेश अध्यक्ष ने कहा कि भाजपा के प्रत्याशी खुद टिकट लौटा रहे हैं। कोई राजनीतिक जीवन से सन्यास ले रहा है। इससे लोकसभा चुनाव में भाजपा की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता हैउन्होंने अतिवृष्टि व ओलावृष्टि में किसानों को हुए नुकसान पर कहा कि मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने कमरे में बैठकर कहा कि तूफान से नुकसान की 24 घंटे में भरपाई होगी लेकिन हकीकत एकदम अलग है। मैं खुद गांवों में गया था। किसानों ने बताया कि न तो कोई अधिकारी आया और न ही भाजपा के जनप्रतिनिधि। ऐसे में सीएम बताएं कि मुआवजा कैसे मिलेगाउन्होंने आरोप लगाया कि सरकार झूठ बोल रही है। पिछले बजट में नाममात्र के किसानों को मुआवजा दिया गया और इस साल भी मल्टीनेशनल कंपनियों को फायदा पहुंचाया जा रहा है।

पांच साल जेल की सजा के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट पहुंचा बाहुबली मुख्तार अंसारी

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

वाराणसी।जस्टिस बेला एम त्रिवेदी, जस्टिस पंकज मित्तल की पीठ ने मंगलवार को यह कहकर याचिका पर सुनवाई टाल दी कि मुख्तार अंसारी एक कुख्यात अपराधी है और सुनवाई के लिए कई मामले पहले से लंबित हैं। बाहुबली नेता मुख्तार अंसारी की याचिका पर सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई टाल दी है। मुख्तार अंसारी ने 24 साल पुराने एक मामले में उसे पांच साल जेल की सजा सुनाने वाले इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की थी, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने मुख्तार अंसारी के आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखते हुए उसकी याचिका पर फिलहाल सुनवाई टाल दी है। जस्टिस बेला एम त्रिवेदी, जस्टिस पंकज मित्तल की पीठ ने मंगलवार को यह कहकर याचिका पर सुनवाई टाल दी कि मुख्तार अंसारी एक कुख्यात अपराधी है और सुनवाई के लिए कई मामले पहले से लंबित हैं। मुख्तार अंसारी की याचिका पर सुप्रीम कोर्ट ने बीती साल 13 अक्तूबर को यूपी सरकार से जवाब मांगा था। यूपी सरकार की तरफ से वरिष्ठ वकील गरिमा

प्रसाद कोर्ट में पेश हुईं। गरिमा प्रसाद ने कहा कि मुख्तार अंसारी राज्य में आतंक का पर्याय रहा है और अब वह जेल की सलाखों के पीछे बंद है।

भाजपा में शामिल हुए डॉ. राजेश मिश्रा, वाराणसी लोकसभा सीट से रह चुके हैं सांसद

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

वाराणसी।वाराणसी से कांग्रेस के पूर्व सांसद रहे राजेश मिश्रा ने भारतीय जनता पार्टी में सदस्यता ग्रहण की है। लोकसभा चुनाव से ठीक पहले राजेश मिश्रा के भाजपा में शामिल होने से कांग्रेस पार्टी को बड़ा झटका लगा है। वाराणसी लोकसभा सीट से सांसद रहे डॉ. राजेश मिश्रा भारतीय जनता पार्टी में शामिल हुए हैं। उन्होंने दिल्ली स्थित भाजपा केंद्रीय कार्यालय में पार्टी की सदस्यता ग्रहण की। वर्ष 2004 में कांग्रेस पार्टी से डॉ. राजेश मिश्रा वाराणसी लोकसभा सीट से चुनाव जीत कर सांसद बने थे। इसके बाद से यहां कांग्रेस को जीत नहीं मिली। इधर, आगामी लोकसभा चुनाव को लेकर कांग्रेस ने डॉ. राजेश मिश्रा को वाराणसी से चुनाव लड़ने की बात कही तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया।इससे पहले चर्चा थी कि राजेश मिश्रा ठीक चुनाव के बीच कांग्रेस से पाला बदल कर

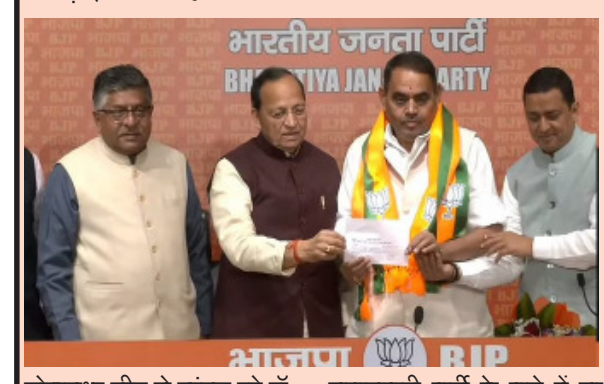

समाजवादी पार्टी के पाले में जा सकते हैं और सपा की साइकिल पर सवार होकर भदोही लोकसभा सीट से ताल ठोक सकते हैं। अजय राय और राजेश मिश्रा के बीच तनातनी लंबे समय से चर्चा का विषय बनी रही है, लेकिन चुनाव के बीच कांग्रेस के दोनों शीर्ष नेताओं में यह अनबन पार्टी को नुकसान पहुंचा सकती है

स्वास्थ्य जागरूकता का सन्देश लेकर मिर्ज़ापुर पहुंची साइकिल यात्रा

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

मीरजापुर।भदोही साइकिलिंग क्लब के तत्वाधान में अताउल अंसारी की अध्यक्षता में लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने के लिए प्रत्येक सप्ताह की तरह आज भी सुबह भोर में गोपीगंज बड़ा चौराहा से एक साइकिलिंग यात्रा मिर्ज़ापुर जनपद के लिए निकाली गयी । तड़के भोर में सुबह 5:00 बजे सभी साइकिल चालक गोपीगंज बड़ा चौराहा पर पहुँच गए । साइकिल यात्रा आरंभ होकर कालीदेवी, ककराही, गोपपुर, जगन्नाथपुर, डोमनपुर, नरउर होते हुए मिर्ज़ापुर जनपद में प्रवेश करके हनुमान नगर, चेतगंज, पखवईया, तिलठी, श्री पट्टी, मवैया, चिल्ह, इमामबाड़ा, पक्के घाट होते हुए घंटाघर पहुंची । वहां पहुँचने पर मिर्ज़ापुर शहर के चेयरमैन श्याम सुन्दर केशरी अपनों समर्थकों के साथ सभी का स्वागत किया और कहा कि स्वस्थ रहना है तो सभी को सुबह उठना ही होगा । पहले पारंपरिक आवागमन का साधन साइकिल हुआ करता था । सभी लोग आस पास के काम साइकिल से करते थे जिससे उनके शरीर का एक व्यायाम होते था और वे निरोग रहते थे । सभी मिर्ज़ापुर निवासियों से निवेदन है कि आस पास के काम साइकिल

से करे जिससे उनका आर्थिक लाभ हो, प्रदुषण कम हो और वो स्वस्थ भी रहे । चेयरमैन ने साइकिल यात्रा को हरी झंडी दिखाकर रवाना किया और स्वयं साइकिल लेकर यात्रा में शामिल हुए साइकिल यात्रा पुनः आरंभ होकर घंटाघर, वासलीगंज चौराहा का भ्रमण करते हुए हिंदुस्तान जिंदाबाद, स्वस्थ रहे मस्त रहे, करो योग रहो निरोग, हम सबने ये ठाना है पुरे उत्तर प्रदेश को स्वस्थ्य बनाना है, सुबह की हवा सौ रोगों की दवा, भारत माता की जय, वन्दे मातरम का नारा लगाते हुए लोगों को सुबह उठने, योग, व्यायाम करने, साइकिल चलाने के फ़ायदे के बारे में जागरूक करते हुए तरकापुर संकट मोचन मंदिर के सामने इसका समापन हुआ ।बताते चले की पुरेगुलाब गोपीगंज निवासी अताउल अंसारी की अध्यक्षता में लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने के लिए प्रत्येक सप्ताह पिछले दो वर्ष से साइकिल यात्रा निकाली जा रही है। इस क्रम में पूर्व में ये साइकिल यात्रा कई प्रदेश में पहुचकर लोगो को जागरूक करने का कार्य कर रहे है।

घर के नीचे खड़ी कार में पेट्रोल डाल लगा दी आग

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

कानपुर।कार पर पेट्रोल डालकर आगजनी की घटना को अंजाम दिया गया। अगर आग प्लॉस्टिक के शेड से होते हुए रेस्टोरेंट और बिल्डिंग को चपेट में ले लेती, तो बड़ी घटना हो सकती थी। उस समय बिल्डिंग में रेस्टोरेंट के कर्मचारी समेत दस लोग थे और बाहर आने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है।कानपुर में चकेरी के श्यामनगर में रविवार देर रात स्कूटी सवार युवक ने एक रेस्टोरेंट के बाहर खड़ी कार पर पेट्रोल डाल आग लगा दी। घटना सीसीटीवी में कैद हुई है। चौकी प्रभारी 16 घंटे बाद भी जानकारी से इन्कार करते रहे। वहीं, पुलिस एक माह पूर्व श्यामनगर में हुई आगजनी के प्रयास की घटना का भी अभी तक खुलासा नहीं कर सकी है।श्यामनगर डबल रोड रामपुरम हाउसिंग सोसायटी में अनूप कुमार शुक्ला परिवार के साथ रहते हैं। प्रथम तल में उनका दीपक स्टूडियो है, उसके नीचे भतीजा रेस्टोरेंट का संचालन करता है। रेस्टोरेंट के बाहर उन्होंने प्लास्टिक का शेड लगवा रखा है, जिसमें कार खड़ी होती है। बताया कि रविवार रात करीब 11:45 बजे वह कार खड़ी कर ऊपर चले गए।

आंखों इलाज कराने गया जा रहे बुजुर्ग की प्लेटफॉर्म पर गिरकर मौत

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

गोरखपुर।गोरखपुर सिंघड़िया के बुजुर्ग अपने परिजनों के साथ गया आंखों का इलाज करवाने जा रहे थे। रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़ी ट्रेन पर चढ़ने के दौरान ही चक्कर आ गया और प्लेटफार्म और ट्रेन के बीच में गिर गए।गोरखपुर

से बेटे-बहू के साथ सोमवार को गया जा रहे एक बुजुर्ग की रेलवे प्लेटफॉर्म पर गिरकर मौत हो गई। ट्रेन में चढ़ने से पहले ही बुजुर्ग को चक्कर आ गया और वह प्लेटफॉर्म और ट्रेन के बीच में गिर गए। परिवार के लोगों ने बड़ी मुश्किल से बाहर खींचा, मगर तब तक उनकी मौत हो गई थी। बेटे ने बताया कि पिता के आंखों के इलाज के लिए उन्हें गया ले जा रहे थे।सिंघड़िया के रहने वाले 92 वर्षीय शारदा प्रसाद पांडेय सोमवार को बेटा-बहू के साथ शालिमार एक्सप्रेस से बिहार के गया शहर जाने वाले थे। लगभग 1:30 बजे वह ट्रेन में चढ़ने जा रहे थे, तभी अचानक गिर गए। बेटे-बहू जब तक उनको पकड़ पाते, वह ट्रेन और प्लेटफार्म के बीच में फंस गए थे। प्लेटफार्म पर खड़े अन्य यात्रियों ने दौड़कर मदद की और उनको बाहर निकाला गया।लोगों की सूचना पर आए रेलवे के डॉक्टरों ने चेक किया तो सांस नहीं चल रही थी। बुजुर्ग के बेटे संजीव पांडेय ने बताया कि वह पिता को लेकर गया जा रहे थे। वहां पर उनकी आंख का ऑपरेशन करवाना था। ट्रेन पर चढ़ते समय चक्कर आ गया और वह प्लेटफॉर्म पर गिर गए।

सबसे अधिक विभागों वाला प्रदेश का पहला न्यूरो सेंटर होगा हैलट, हर तरह के न्यूरो रोग का मिलेगा इलाज

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

कानपुर।हैलट का न्यूरो साइंसेस सेंटर प्रदेश का पहला सेंटर होगा, जहां न्यूरो हिस्टोपैथोलॉजी, न्यूरो रेडियोलॉजी, न्यूरो अनेस्थेसिया और न्यूरो ऑफ्थेलमोलोजी के अलग से विभाग होंगे।कानपुर में हैलट के न्यूरो साइंसेज सेंटर में हर प्रकार के न्यूरो रोग का इलाज मिलेगा। न्यूरो पैथोलॉजी विभाग और न्यूरो रेडियोलॉजी विभाग में रोगी की सटीक जांच होगी और विशेषज्ञ उसे इलाज देंगे। न्यूरो रोगियों को इलाज के लिए लखनऊ, दिल्ली और मुंबई नहीं जाना पड़ेगा। हैलट का न्यूरो साइंसेज सेंटर प्रदेश का पहला सेंटर होगा, जहां न्यूरो हिस्टोपैथोलॉजी, न्यूरो रेडियोलॉजी, न्यूरो अनेस्थेसिया और न्यूरो ऑफ्थेलमोलोजी के अलग प्रमुख डॉ. मनीष सिंह ने बताया

से विभाग होंगे। न्यूरो ऑफ्थेलमोलोजी में न्यूरो से संबंधित नेत्र रोग की जांच की जाएगी। इसके साथ ही इन विषयों में विशेषज्ञ शोध करेंगे, जिससे नई समस्याओं का हल मिल सकेगा।न्यूरो साइंसेस कि न्यूरो हिस्टोपैथोलॉजी, रेडियोलॉजी और न्यूरो ऑफ्थेलमोलोजी में एक प्रोफेसर, एक एसोसिएट प्रोफेसर और एक असिस्टेंट प्रोफेसर के पद सृजित हो गए हैं।

मदुरै रेल कोच अग्निकांड में एनईआर के तीन विभाग दोषी

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

मेरठ।मदुरै रेल कोच अग्निकांड की जांच रेलवे संरक्षा आयुक्त(सीआरएम) की तरफ से की जा रही थी। जांच रिपोर्ट के अनुसार, एनईआर के तीन विभागों को इसमें आरपीएफ को भी हादसे के लिए जिम्मेदार बताया है।बता दें कि 26 अगस्त, 2023 को मदुरै स्टेशन पर खड़ी पुनालुर- मदुरै एक्सप्रेस की एक बोगी में गैस सिलेंडर फटने से आग लग गई

दोषी पाया गया।मदुरै कोच अग्निकांड की जांच कर रहे रेलवे संरक्षा आयुक्त (सीआरएस) ने अंतिम रिपोर्ट जारी कर दी है। जांच रिपोर्ट में पूर्वोत्तर रेलवे के तीन विभागों को जिम्मेदार ठहराया है। जांच कमेटी ने परिचालन और यांत्रिक विभाग के साथ ही थी। आग इतनी भयंकर थी कि 10 लोगों की मौत हो गई थी, जबकि कई झुलस गए थे। इस कोच की बुकिंग पूर्वोत्तर रेलवे के लखनऊ मंडल से आईआरसीटीसी ने की थी। रेलवे बोर्ड ने सीआरएस को हादसे की जांच का जिम्मा सौंपा था।

जयंत नहीं लड़ेंगे चुनाव, सांगवान पर खेला दांव, 87 साल बाद चौधरी परिवार बतौर प्रत्याशी नहीं शामिल

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

मेरठ।सपा से गठबंधन और भाजपा की दोस्ती तक के सफर में रालोद को लेकर यही कयास लगाए जा रहे थे कि इस सीट पर चौधरी जयंत सिंह या उनकी पत्नी चारु

चौधरी चुनावी मैदान में ताल ठोकेंगे लेकिन जयंत ने सोमवार को अलग ही दांव चला।राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) का हिस्सा बने रालोद ने अपने हिस्से में आई बिजनौर और बागपत लोकसभा सीट पर प्रत्याशी घोषित कर दिए हैं। साफ हो गया है कि रालोद अध्यक्ष जयंत सिंह चुनाव नहीं लड़ेंगे। पिछले 87 साल में ऐसा पहली बार होगा कि चौधरी परिवार का सदस्य चुनाव में प्रत्याशी के तौर पर शामिल नहीं होगा।अब तक हुए विधानसभा, लोकसभा या राज्यसभा चुनाव में परिवार का कोई न कोई सदस्य चुनाव लड़ता रहा है। सिर्फ लोकसभा चुनाव की बात करें तो 53 साल बाद पहली बार परिवार चुनाव नहीं लड़ेगा।भारत रत्न पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने पहली बार संयुक्त प्रांत से 1937 में चुनाव लड़ा और जीत दर्ज की थी। वर्ष 1946 से 1950 की दूसरी कांग्रेस सरकार में संसदीय सचिव बनाए गए थे, उन्हें जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार बिल का प्रमुख वास्तुकार एवं प्रतिरक्षक नियुक्त किया गया था।1952 में बिल कानून में बदल गया और चौधरी चरण सिंह किसानों के मसीहा बन गए। साल 1977 में बागपत से सांसद बनने से पहले चौधरी चरण सिंह प्रत्येक विधानसभा चुनाव लड़े।इसके बाद वह लगातार तीन लोकसभा चुनाव लड़े, उनकी बेटी सरोज देवी 1985 में छपरौली से विधायक रहीं। चौधरी अजित सिंह ने 1991 में विधानसभा और लगातार लोकसभा चुनाव लड़े। रालोद अध्यक्ष जयंत सिंह ने भी 2019 का चुनाव लड़ा, लेकिन वह हार गए थे। इसके बाद वह राज्यसभा सांसद बन गए।चौधरी चरण सिंह ने पहला लोकसभा चुनाव 1971 में मुजफ्फरनगर से लड़ा, लेकिन वह ठाकुर विजयपाल सिंह से हार गए थे। इसके बाद वह 1977, 1980 और 1984 में वह बागपत से सांसद चुने गए थे।

सीएम कार्यालय पहुंचे पुरकाजी विधायक अनिल कुमार, मिल सकती है बड़ी जिम्मेदारी

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

गोरखपुर।आज योगी मंत्रिमंडल का विस्तार होना है। रालोद के अध्यक्ष जयंत सिंह की कॉल के बाद पुरकाजी विधायक अनिल कुमार भी लखनऊ पहुंच गए हैं। वह सीएम कार्यालय बुलाए गए हैं। कयास लगाए जा रहे हैं कि उन्हें मंत्री पद मिल सकता है।प्रदेश के मंत्रीमंडल विस्तार में रालोद कोटे से पुरकाजी विधायक अनिल कुमार को मंत्री बनाए जाने की संभावना है। बताया जा रहा है कि शनिवार रात रालोद अध्यक्ष जयंत सिंह की कॉल के बाद उनके मंत्री बनने की पुष्टि हुई। कॉल के बाद ही अनिल कुमार अपने समर्थकों के साथ लखनऊ पहुंच गए। विधायक मूल रूप से सहारनपुर के गांव तहारपुर के रहने वाले हैं। पुरकाजी सुरक्षित सीट से रालोद के सिंबल पर अनिल कुमार ने भाजपा के प्रत्याशी पूर्व विधायक प्रमोद उटवाल को हराया था। चुनाव से पहले अनिल कुमार सपा में सक्रिय थे, लेकिन रालोद के सिंबल पर चुनाव लड़कर वह तीसरी बार विधायक चुने गए थे।इससे पहले चरथावल सुरक्षित सीट से बसपा के टिकट पर वह पहली बार 35417 वोट पाकर विधायक बने थे। वर्ष 2012 में परिसीमन के बाद सुरक्षित सीट पुरकाजी बनीं। अनिल कुमार दूसरी बार पुरकाजी से विधायक चुने गए थे। वर्ष 2017 के चुनाव में उन्हें हार का सामना करना पड़ा। वर्ष 2022 में वह रालोद के सिंबल पर जीतकर विधानसभा पहुंचे थे।पुरकाजी सुरक्षित सीट से रालोद विधायक अनिल कुमार ने कहा कि उन्हें रालोद अध्यक्ष जयंत सिंह ने लखनऊ जाने के लिए कहा है। बड़ी जिम्मेदारी देने की बात हुई है। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। एनडीए गठबंधन यूपी में क्लीन स्वीप करेगा।

एपीडा की पहल पर प्रदेश के किसानों ने सऊदी अरब में किया प्रतिभाग

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

सोनभद्र। जनपद के प्रगतिशील किसान कौशलेश पाठक ने पांच सप्ताह यूनाइटेड अरब एमिरेटस रवाना हुआ था।रामनाथ रघुनाथ कृषक उत्पादक कंपनी के निदेशक

दिवसीय विदेश यूनाइटेड अरब एमिरेटस की यात्रा से स्वदेश लौटने के बाद सोमवार को बताया कि यह यात्रा एपीडा की पहल पर सम्पन्न हुआ। उन्होंने कहा कि पूरे प्रदेश से चयनित किसानों का दल गत कौशलेश पाठक ने बताया कि इस यात्रा का उद्देश्य किसानों के उपज का अधिक लाभ मिले और वैज्ञानिक तरीके से खेती -बाडी करते हुए अधिकाधिक उत्पादन किया जा सके। मालूम हो कि कृषि एवं पर प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) द्वारा पहल किया गया। जिसमें कृषि के विशेषज्ञों द्वारा किसानों को खेती -बाडी से जुड़े विविध तौर तरीके बताए गए।ज्ञातव्य है कि जनपद सोनभद्र का पूर्वी एवं उत्तरी क्षेत्र धान का कटोरा के लिए जाना जाता है। इस क्षेत्र में धान की अच्छी खासी किस्मे पैदा की जाती है। यही नहीं, यहां टमाटर, मिर्ची की भी खेती बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है।जिसको देखते हुए उक्त संस्थान ने यहां के किसानों को अपने उत्पाद को यूनाइटेड अरब एमिरेटस निर्यात कर अधिक लाभ कमाया जा सकता है के लिए प्रेरित किया गया है।श्री पाठक ने इस विदेश यात्रा को किसानों के लिए फायदेमंद और शानदार बताया है। इस विदेशी यात्रा में प्रदेश के विभिन्न जिलों से जुड़े दर्जनों किसान प्रतिभागी रहे।

दूषित जल से होने वाली बीमारियों से आमजन को किया सचेत

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

सोनभद्र। जनपद सोनभद्र जल जीवन मिशन के अंतर्गत आज ग्राम स्तर एवम ग्राम पंचायत स्तर पर जल गुडवत्ता की जांच एवम निगरानी फंक्शनल हाउस होल्ड

विकास खण्ड कर्मा में ग्रामीणों को जल जानित बीमारियों से बचाव के लिए जागरूक किया गया और जल की गुडवत्ता एवम जाँच तथा जल बचाव जानकारी दी गई जनपद में विकास खण्ड कर्मा के खण्ड विकास अधिकारी अजित कुमार यादव तथा सहायक विकास अधिकारी (म0आई0) सुनीत कुमार बाबू विंध्यवासिनी मिश्र ने राज्य पेयजल स्वच्छता मिशन नमामी गंगे तथा ग्रामीण जलापूर्ति विभाग उत्तर प्रदेश जल जीवन मिशन ,हर घर जल योजनान्तर्गत जल जीवन मिशन जल गुडवत्ता योजना अंतगर्त जनपद स्तर एवम टैब कनेक्शन शुद्ध एवम सुरक्षित पेयजल तथा जल जानित विमारियों से बचाव हेतु जल गुडवत्ता जाँच एवम सामाजिक मानचित्रण स्वच्छता सम्बन्धित प्रदर्शनी तथा आ0ई0सी0 मटेरियल वितरण एवम वी0 डी0 ओ0 चलचित्र का माध्यम से जागरूकता मिशन को हरी झण्डी दिखाकर वाहनो को रवाना किया गया जिसमें इंफोटेक सेलुसन लखनऊ के प्रतिनिधि नीलेश पाठक यूनिसेफ प्रतिनिधि विष्णु मौर्य उपसमन्वयक राधा राजपूत व उपसमन्वयक रामदत्त शुक्ल के साथ सचिव पंचायत प्राधान आदि लोग उपस्थित रहे।

सुरक्षा के प्रति हमेशा एलर्ट मोड में ही रहकर जीरो हार्म लक्ष्य को किया जा सकता है प्राप्त .... शैलेश

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

सोनभद्र। हिण्डालको, रेनूसागर पावर डिवीजन में 53वें राष्ट्रीय सुरक्षा माह की भव्य शुरुआत कारखाना परिसर स्थित सुरक्षा लॉन में हुई, समारोह के मुख्य अतिथि हिण्डालको,रेनूसागर पावर डिवीजन के यूनिट एच आर प्रमुख शैलेश विक्रम सिंह ने फीता काट कर उदघाटन किया। तत्पचात मुख्य अतिथि ने भगवान विश्वकर्मा की विधि विधान से पूजा अर्चना कर संस्थान के उत्तरोत्तर प्रगति व कर्मचारियों के लिए मंगल की कामना की व सुरक्षा ध्वज फहराया। तत्पश्चात मुख्य अतिथि ने सुरक्षा जागरुकता माह के आयोजन को सम्बोधित करते हुए उपस्थित सभी अधिकारियों, कर्मचारियों को 53वें राष्ट्रीय सुरक्षा दिवस की बधाई देते हुए कहा कि हमारा प्रबन्धन सुरक्षा के प्रति दृढ़ संकल्पित है, शून्य दुर्घटना से एक कदम आगे जीरो हार्म हमारा लक्ष्य होना चाहिए। उन्होने सुरक्षा के महत्व के बारे में विस्तृत रुप से चर्चा करते हुए कहा कि सभी कर्मियों को कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व सुरक्षा नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए, सुरक्षा से संबन्धित छोटी सी भूल भयानक दुर्घटना का कारण बन सकती है।

मुख्य अतिथि ने सुरक्षा नियमों का पालन करने हेतु सभी को प्रेरित करते हुए कहा की हमारे सभी कर्मचारी अधिकारी सुरक्षा के प्रति हमेशा एलर्ट मोड में रह कर ही कार्य करे, अंत में मुख्य अतिथि ने सुरक्षा से संबन्धित नारा देते हुए कहा कि "सेफ्टी दिल से ठ अपनायेगे तभी हम जीरो हार्म लक्ष्य हासिल कर पाएँगे। इसके पूर्व मेंटेनेंस हेड जगदीश पात्रा ने भी उपस्थित सभी अधिकारियों, कर्मचारियों का आभार ब्यक्त करते हुए कहा कि लापरवाही व मनमानी दुर्घटना के मुख्य कारण है । हमें कार्य शुरु करने के पूर्व सुरक्षा के प्रति सुनिश्चित हो कर ही कार्य करना चाहिए, संस्थान का मुख्य उद्देश्य है कि उच्च गुणवत्ता, सुरक्षा, स्वस्थ्य वातावरण के उन्नयन के प्रति कार्य करना है। उन्होंने सुरक्षा के प्रति पुनः अपनी प्रतिबद्धता दोहराई। इसी क्रम में मान्यता प्राप्त श्रमिक संगठन के वरिष्ठ पदाधिकारी निर्दोष कुमार सिंह ने कहा कि यदि कोई भी कर्मी कार्यस्थल पर असुरक्षित तरीके से कार्य कर रहा हो तो हमारी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि हम उसे समझायें कि वह सुरक्षित तरीके से कार्य करे। कार्यक्रम का सफल सञ्चालन करते हुए कार्यक्रम के संयोजक सेफ्टी विभाग के प्रमुख ने उपस्थित सभी का आभार व्यक्त करते हुए सर्वप्रथम सभी को सुरक्षा कि शपथ दिलाई व हिण्डालको समूह के प्रबन्ध निदेशक का सुरक्षा सन्देश पढ़कर सुनाया ।

राबर्ट्सगंज कचहरी परिसर स्थित वादकारी विश्रामालय में हुआ आयोजन

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

सोनभद्र। अलग पूर्वांचल राज्य की मांग का रहे संगठन पूर्वांचल राज्य जनमोर्चा एवम् भारतीय विधिक सहायता एसोसिएशन के सयुक्त तत्वाधान में सोनभद्र जनपद का 35 वा स्थापना दिवस सोमवार को अधिवक्ता भवन, तहसील परिसर, रावटसगंज में केक काटकर मनाया गया। वक्ताओं ने सोनभद्र में एम्स और केंद्रीय विश्व विद्यालय की मांग उठाई।राष्ट्रीय अध्यक्ष संदीप जायसवाल की अध्यक्षता में वरिष्ठ अधिवक्ता मुरलीधर शुक्ल व डिस्ट्रिक्ट बार एसोसिएशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष डॉ अतुल प्रताप पटेल द्वारा केक काटकर 35 वा स्थापना मनाया गया। पवन कुमार सिंह एड राष्ट्रीय महासचिव पूर्वांचल राज्य जनमोर्चा ने कहा कि 04 मार्च 1989 को जिले की आधारशिला रखी गई। इसके तीन दशक बाद भी यहां का अपेक्षित विकास नहीं हो सका। स्थापना दिवस के अवसर पर मांग किया कि यहां एम्स जैसे एक उच्च स्तरीय स्वास्थ्य संस्थान एवं केंद्रीय विश्वविद्यालय बने, जिससे छात्र पढ़ सके। नए कल काखाने बने जिससे स्थानीय बेरोजगारों को रोजगार मिले। जनपद में जनहित के काम होने चाहिए जनसरोकारी सोच होनी चाहिए जिससे की जनपद का चहुमुखी विकास हो सके ।पूर्व महामंत्री डिस्ट्रिक्ट बार एसोसिएशन विमल प्रताप सिंह एडवोकेट ने कहा कि सोनभद्र उत्तर प्रदेश मे क्षेत्रफल के हिसाब से बड़ा जिला है । यह भारत का एकमात्र जिला है जो चार राज्यों की सीमा में है, अर्थात् पश्चिम में मध्य प्रदेश , दक्षिण में छत्तीसगढ़ , दक्षिण-पूर्व में झारखंड और उत्तर-पूर्व में बिहार । सोनभद्र जिला एक औद्योगिक क्षेत्र है और इसमें बहुत सारे बॉक्साइट, चूना पत्थर, कोयला, सोना आदि हैं। इसे भारत की ऊर्जा राजधानीठ कहा जाता है क्योंकि यहां बहुत सारे बिजली संयंत्र हैं। और कैमूर वाइल्डलाइफ सैंक्चुअरी, सलखन जीवाश्म पार्क, विजयगढ़ किला, अगोरी फोर्ट , मुक्खा वॉटरफाल जैसे स्थलों के साथ रॉक पेंटिंग जल्द ही पर्यटन मानचित्र पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराएगी।मोर्चा के राष्ट्रीय सचिव अशोक कनौजिया एड ने कहा कि सोनभद्र के चारों तरफ चार प्रदेशों का पहरा है।

अयोध्या पहुंचे मध्य प्रदेश के सीएम मोहन यादव का बयान

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

अयोध्या। कई जन्मों के पुण्य के

बाद ये दर्शन प्राप्त हो रहा है प्राण प्रतिष्ठा के बाद 22 जनवरी अमर दिवस हुआ है उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश का संबंध 2000 वर्ष पुराना हमहाराज विक्रमादित्य ने अयोध्या आकर राम मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था विकास कार्य करवाए थे,500 साल बाद फिर अच्छा समय आया है भगवान राम की प्राण प्रतिष्ठा के बाद अयोध्या के भव्य नगरी बनी है अयोध्या पहुंचकर प्रभु श्री राम के चरणों में प्रणाम करते हैं प्रदेश की सरकार आगामी दिनों में जनता के लिए कार्य करें

नारी शक्ति वंदन अभियान के अंतर्गत निकला पदयात्रा

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

सोनभद्र। भारतीय जनता पार्टी महिला मोर्चा सोनभद्र द्वारा आयोजित नारी शक्ति वंदन अभियान के अंतर्गत पदयात्रा नगर भ्रमण का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जिसमे मुख्यअतिथि के रुप में भाजपा जिलाध्यक्ष नन्दलाल व विशिष्ठ अतिथि के रुप मे राज्यमंत्री उ0प्र0सरकार संजीव कुमार गोंड,सदर विधायक भूपेश चौबे, नगर पालिका चेयरमैन रुबी प्रसाद मौजूद रही।भ्रमण कार्यक्रम सवेरा ग्राउण्ड से प्रारम्भ होकर मेन मार्केट होते हुए चण्डी तिराहे पर समाप्त हुआ कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य मातृशक्ति का जनजागरण करना था इस कार्यक्रम मे भाजपा महिला

मोर्चा की महिला कार्यकर्ता हाथ मे स्लोगन लिखा हुआ स्टैण्डी व गले मे भाजपा का टोपी व पट्टा लगाकर नारा लगाते हुए गाजे बाजे के साथ नगर का भ्रमण किया गया।इस कार्यक्रम मे प्रमुख रुप से कुसुम शर्मा, पुष्पा सिंह, बलराम सोनी, गुडिया त्रिपाठी,रंजना पांडेय, सरोज केशरी, तारा देवी, अनामिका जायसवाल, रिशु सिंह, मीना पाटील, सुषमा गोंड, हेमलता जायसवाल, कविता यादव, सहित आदि कार्यकर्ता मौजद रहे।

प्रधानमंत्री द्वारा एनटीपीसी सिंगरौली के तृतीय चरण 2800 मेगावाट इकाइयों का हुआ शिलान्यास

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

सोनभद्र। प्रधानमंत्री द्वारा एनटीपीसी सिंगरौली मे 800 मेगावाट की दो यूनिट के शिलान्यास के साथ शक्तिनागर परियोजना के तृतीय चरण के विस्तारीकरण का मार्ग प्रशस्त हो गया। विद्युत उत्पादन के क्षेत्र मे नए मानक स्थापित करते हुए आज देश के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने आदिलाबाद, तेलंगाना से में उन्होने एनटीपीसी कि सभी विकास परियोजनाओं को राष्ट्र निर्माण हेतु कंधे से कंधा मिलाकर अग्रसरित हेतु बधाई दी। एनटीपीसी सिंगरौली के परियोजना प्रमुख श्री राजीव अकोटकर ने कहा कि शक्तिनागर सोनभद्र स्थित एनटीपीसी सिंगरौली ऊर्जा के क्षेत्र में योगदान देने वाली एनटीपीसी की मातृ इकाई है जो 1981 से

द्वारा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से एनटीपीसी सिंगरौली के तृतीय चरण के विस्तारीकरण के साथ 800 मेगावाट की दो इकाइयां राष्ट्र को समर्पित की गयी। तृतीय चरण के शिलान्यास कार्यक्रम में माननीय प्रधानमंत्री जी ने कहा कि एक विकसित एवं आत्मनिर्भर राष्ट्र के निर्माण हेतु विद्युत उत्पादन एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अपने उद्बोधन लगातार बिजली उत्पादन कर कई राज्यों को बिजली उपलब्ध करा रही है और इसके विस्तारिकरण पर हम सभी गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। बताते चलें कि आज देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा एनटीपीसी सिंगरौली शक्तिनगर समेत कई परियोजनाओं के 56 हज़ार करोड़ से भी अधिक तेलंगाना से शिलान्यास किया गया है।।

मूल्य वृद्धि नियंत्रण के लिये निर्धारित दर पर बाजार में चावल की गाड़ियों को उप निदेशक खाद्य ने किया रवाना

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

मीरजापुर। भारत सरकार द्वारा रियाती दर सरकार से रसोई तक कोआपरेटिव सहकारिता व मां अन्न पूर्णा प्राइवेट लिमिटेड राइस मिल के प्रोपराइटर पप्पू तिवारी

एन0सी0सी0एफ0 द्वारा संचालित मोबाइल वैन एवं विक्रय केन्द्रो पर चावल के मूल्य वृद्धि पर नियंत्रण रखने के दृष्टिकोण से चलायी गयी योजना के तहत आज मां अन्नपूर्णा राइस मिल से चावल के 10-10 के किलो के पैकेट के भरे 04 गाड़ियो को विक्रय केन्द्र व रवाना किया गया। उप निदेशक खाद्य एवं रसद, डिप्टी आर0एम0ओ0 धनंजय सिंह एवं ए0आर0 के द्वारा हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया गया। उप निदेशक खाद्य एवं रसद ने जानकारी देते हुये बताया कि इसका उद्देश्य है कि जन-जन तक सस्ते दर अन्न योजना का लाभ मिले उसी के मूल्य वृद्धि नियंत्रण करने के उद्देश्य यह योजना लागू किया गया हैं, आज 10-10 किलो का पैकेट की चार गाड़ियां विक्रय केन्द्रो के लिये रवाना की गयी है ।

NAINI INDUSTRIAL TRAINING CENTRE
(Govt. Affiliated, Star Graded, Record Holder, ISO Certified Training Centre)
सर्टिफिकेट इन फायर एण्ड सेफ्टी
फायर सेफ्टी पर जिसकी कमाण्ड, उसकी ही है ग्लोबल डिमाण्ड
फायर सेफ्टी मैनेजमेन्ट कोर्स के बाद सेफ्टी सुपरवाइजर, फायर प्रोटेक्शन इंजिनियर, सिस्टम सिक्योरिटी एडमिनिस्ट्रेटर आदि विभिन्न पदों पर नियुक्ति मिल जाती है। रिलीफ एजेन्सी N.G.O., डिफेन्स सर्विसेज फायर सर्विस आर्डिनेन्स फैक्ट्री, महानगर पालिका, नगर निगम, एयरपोर्ट, पावर प्लांट, स्टील प्लान्ट, माइनिंग इन्डस्ट्रीज, पेट्रोलियम कम्पनी, फूड इण्डस्ट्रीज, रिफाइनरीज, टेक्सटाइल मिल, टावर कम्पनी, इलेक्ट्रानिक कम्पनी, कोयले की खदानों एवं जहाजों आदि क्षेत्रों में फायर सेफ्टी मैनेजमेन्ट के जानकारों को बहुत अधिक मौका मिलता है
नोटः फायर सेफ्टी कोर्स करें और देश -विदेश, सरकारी और प्राइवेट क्षेत्रों में अच्छे पैकेज के साथ नौकरी पायें।
महानिदेशक अग्निशमन सुरक्षा एवं आपात सेवा उत्तर प्रदेश
★C.O.P.A. ★Electrician ★Fire Safety & Industrial Security ★Computer Hardware & Maintenance
★Fitter ★Computer Application ★Welding Technology
★Security Service ★Repair of Refrigerator & A.C. ★Computer Teacher Training
★Electric Technician ★Certificate in YOGA
Message
नन्दी गोपाल गुप्ता 'नन्दी'
मंत्री
स्टाम्प न्यायालय शुल्क, पंजीयन एवं नागरिक उड्डयन विभाग उत्तर प्रदेश
मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आपकी संस्था "नैनी आद्यौगिक प्रशिक्षण केन्द्र" द्वारा विगत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी "प्रवेश विवर्जिका" नाम की पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका छात्र / छात्राओं में चेतना, सृजनात्मक शक्ति, बौद्धिक क्षमता एवं उनकी वैचारिक एवं मानसिक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने मे अवश्य सार्थक सिद्ध होगी।
संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका " प्रवेश विवर्जिका" के सफल प्रकाशन हेतु हार्दिक शुभकामनाएं!
भवदीय
नन्द गोपाल गुप्ता 'नन्दी'
Nand Goapal Gupta
नन्द गोपाल गुप्ता 'नन्दी'
मंत्री
N.C.V.T. D.G.E.T से मान्यता प्राप्त
फिटर
आसान किस्तों में फीस जमा करने की सुविधा
COPA
छात्रवृत्ति की सुविधा
100% प्लेसमेंट की गारंटी
अप्रेन्टिशिप की सुविधा
Visit us at www.nainiiti.com Call: 9415608710, 7459860480
Enjoy Publicity

36 बॉल स्पेल मथीशा पिथराना की हुई बेरहम पिटाई, धांसू शुरुआत के बावजूद फ्लॉप हुआ धोनी का धुरंधर

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। आईपीएल 2023 में सीएसके ने गुजरात टाइटंस को 5 विकेट से धूल चटाकर पांचवीं बार खिताब अपने नाम किया था। पिछले सीजन कई ऐसे स्टार्स देखने को साथ वह दो महीने रहे, जहां उन्होंने एमएस धोनी की कप्तानी में खुद को निखारा।श्रीलंका बनाम बांग्लादेश के बीच खेली जा रही तीन मैचों की टी20 सीरीज के पहले मैच में मथीशा पिथराना ने खराब गेंदबाजी की। उन्होंने 4 ओवर में 14 की इकोनॉमी रेट से 56 रन खर्च कि। इस दौरान उनके हाथों सिर्फ एक सफलता लगी। मथीशा ने शानदार शुरुआत की थी। जहां उन्होंने पहले ओवर में 2 रन ही खर्च किए थे लेकिन इसके बाद वह रन लुटाते हुए नजर आए।श्रीलंका बनाम बांग्लादेश के बीच खेली जा रही तीन मैचों की टी20 सीरीज के पहले मैच में मथीशा पिथराना ने खराब गेंदबाजी की। उन्होंने 4 ओवर में 14 की इकोनॉमी रेट से 56 रन खर्च कि। इस दौरान उनके हाथों सिर्फ एक सफलता लगी। मथीशा ने शानदार शुरुआत की थी। जहां उन्होंने पहले ओवर में 2 रन ही खर्च किए थे लेकिन इसके बाद वह रन लुटाते हुए नजर आए।दरअसल, श्रीलंका बनाम बांग्लादेश के बीच खेली जा रही तीन मैचों की टी20 सीरीज के पहले मैच में मथीशा पिथराना ने खराब गेंदबाजी की। उन्होंने 4 ओवर में 14 की इकोनॉमी रेट से 56 रन खर्च कि। इस दौरान उनके हाथों सिर्फ एक सफलता लगी। मथीशा ने शानदार शुरुआत की थी। जहां उन्होंने पहले ओवर में 2 रन ही खर्च किए थे, लेकिन इसके बाद अगले तीन ओवर में वह रन लुटाते हुए नजर आए।उनकी बॉल पर बांग्लादेशी प्लेयर हाथ खोलकर बड़े-बड़े शॉट्स लगाते हुए नजर आए। 21 साल के पथिराना पर इस तरह प्रेशर बन गया। उन्होंने गेंदबाजी करते हुए 9 वाइट और 3 नो बॉल दिए, जिससे उन्होंने 36 बॉल स्पेल डाला। हालांकि उनकी खराब गेंदबाजी के बावजूद जीत श्रीलंकाई टीम को ही मिली। श्रीलंका ने 3 रन से बांग्लादेश को पहले टी20घ् में मात दी, लेकिन पथिराना का ये परफॉर्मेंस सिर्फ श्रीलंकाई टीम को ही नहीं, बल्कि आईपीएल में सीएएसके टीम की भी टेंशन बढ़ा रहा हैं।

मिले, जिन्होंने काफी सुखिय्यां बटोरी। उन्हीं में से एक रहे मथीशा पथिराना, जिनको आईपीएल 2023 खत्म होते-होते श्रीलंकाई क्रिकेट टीम का फ्यूचर स्टार माना जाने लगा था। चेनन्ई सुपर किंग्स के

समरविक्रमा-मेंडिस ने मचाया बल्ले से धमाल बेकार गई जेकर की तूफानी पारा

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। आखिरी गेंद तक चले रोमांचक मुकाबले में श्रीलंका ने बांग्लादेश को पहले टी-20 इंटरनेशनल मुकाबले में 3 रन से हराया। बांग्लादेश को आखिरी ओवर में जीत के लिए 12 रन की दरकार थी, लेकिन टीम 9 रन ही बना सकी। बांग्लादेश की ओर से जेकर अली ने 34 गेंदों पर 68 रन की तूफानी पारी खेली, पर वह टीम को जीत नहीं दिला सके।07 रन के विशाल लक्ष्य का पीछा करने उतरी बांग्लादेश की शुरुआत अच्छी नहीं रहीं। लिटन दास बिना खाता खोले मैथ्यूज की गेंद पर चलते बने। सौम्य सरकार भी बल्ले से कुछ खास कमाल नहीं कर सके और 12 रन बनाकर चलते बने। बांग्लादेश को आखिरी ओवर में जीत के लिए 12 रन की दरकार थी लेकिन टीम 9 रन ही बना सकी।207 रन के विशाल लक्ष्य का पीछा करने उतरी बांग्लादेश की शुरुआत अच्छी नहीं रही। लिटन दास बिना खाता खोले मैथ्यूज की गेंद पर चलते बने। सौम्य सरकार भी बल्ले से कुछ खास कमाल नहीं कर सके और 12 रन बनाकर चलते बने। हुसैन शांतो भी 20 रन बनाने के बाद पथिराना का शिकार बने।68 के स्कोर पर 4 विकेट खोकर मुश्किल में नजर आ रही बांग्लादेश की पारी को महमूदुल्लाह और जकार अली ने बखूबी अंदाज में संभाला। दोनों ने पांचवें विकेट के लिए 47 रन जोड़े। महमूदुल्लाह ने 31 गेंदों पर 54 रन की तेज तर्रार पारी खेली और वह महेश तीक्षणा का शिकार बने।दूसरे छोर से जेकर ने अपनी तूफानी बल्लेबाजी जारी रखी और 34 गेंदों पर 200 के स्ट्राइक रेट से खेलते हुए 68 रन ठोके। हालांकि, जेकर के आउट होते ही बांग्लादेश की पारी बुरी तरह से लड़खड़ा गई और टीम 20 ओवर में 8 विकेट खोकर 203 रन ही बना सकी।टॉस गंवाने के बाद पहले बल्लेबाजी करने उतरी श्रीलंका की शुरुआत भी अच्छी नहीं रही और अविष्का फर्नांडो 4 रन बनाकर आउट हुए। वहीं, कामिंडु मेंडिस भी सिर्फ 19 रन ही बना सके। हालांकि, इसके बाद कुशल मेंडिस और समरविक्रमा ने मोर्चा संभाला।मेंडिस ने 36 गेंदों पर 59 रन की तूफानी पारी खेली, जबकि समरविक्रमा ने 48 गेंदों पर नाबाद 61 रन कूटे। अंतिम ओवरों में असलंका ने सिर्फ 21 गेंदों पर ताबड़तोड़ अंदाज में खेलते हुए नाबाद 44 रन ठोके, जिसके बूते श्रीलंका स्कोर बोर्ड पर 3 विकेट खोकर 206 रन बनाने में सफल रही।

मैं आपसे हमेशा प्यार करूंगी', शेन वॉर्न की दूसरी पुण्यतिथि पर बेटी ने लिखा दिल छू लेने वाला पोस्ट

स?पोर्ट्स डेस?क, नई दिल?ली। महान लेग स्पिनर शेन वॉर्न की बेटी ने अपने पिता की दूसरी पुण्यतिथि पर एक बेहद भावनात्मक पोस्ट लिखा है। याद दिला दें कि शेन वॉर्न का देहांत थाईलैंड में 4 मार्च 2022 को हुआ था। इसी दिन ऑस्ट्रेलियाई विकेटकीपर रॉडनी मार्श ने भी

अंतिम सांस ली थी।ऑस्ट्रेलिया के महान लेग स्पिनर शेन वॉर्न की दूसरी पुण्यतिथि पर उनकी बेटी ब्रूक वॉर्न ने एक बेहद भावनात्मक पोस्ट किया है। ब्रूक ने वो समय याद किया जब वो अपने पिता के साथ समय बिताती थीं। शेन वॉर्न का देहांत 4 मार्च 2022 को थाईलैंड में हुआ था। शेन वॉर्न को विश्व क्रिकेट के महानतम क्रिकेटर्स में से एक माना जाता है।ब्रूक ने सोशल मीडिया पोस्ट के जरिये बताया कि वॉर्न की मृत्यु के बाद पिछले दो साल भावनात?मक रूप से कितने कठिन गुजरे। ब्रूक ने अपने पोस्ट के जरिये उस समय को याद किया जब वो अपने पिता के साथ ब्रिटीश पीरियड क्राइम ड्रामा टीवी सीरीज पीकी ब्लाइंडर्स देखती थीं।शेन वॉर्न का 52 साल की उम्र में निधन हुआ था। वॉर्न थाईलैंड के कू सैमुई आइलैंड पर छुट्टी मना रहे थे। वहां उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। सैमुजाना विला रिजोर्ट के लक?जरी विला में काफी मेडिकल प्रयासों के बावजूद वॉर्न को नहीं बचाया जा सका। वॉर्न की मौत की पुष्टि उनके परिवार और प्रबंधन ने की थी। वॉर्न की मौत से क्रिकेट जगत में शोक की लहर फैल गई थी।

आईपीएल 2024 में नए रोल में दिखेंगे एमएस धोनी होने वाला है बड़ा एलान माही के पोस्ट ने सोशल मीडिया पर मचाई खलबली

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। क्या आईपीएल 2024 में एमएस धोनी बतौर खिलाड़ी

खेलते हुए नजर नहीं आएंगे क्या माही चेन्नई सुपर किंग्स की ओर से किसी नए रोल में दिखाई देंगे ऐसे है कई तमाम सवाल इस समय फैन्स के मन में उठ रहे हैं। इसकी वजह खुद धोनी का सोशल मीडिया पर किया गया नया पोस्ट है। सीएसके के कप्तान ने अपने पोस्ट से सोशल मीडिया पर अचानक से खलबली मचा दी है।एमएस धोनी ने अपने सोशल मीडिया अकाउंट पर एक पोस्ट शेयर किया है। माही के इस पोस्ट ने फैन्स के बीच खलबली मचा दी है। सोशल मीडिया पर धोनी ट्रेड कर रहे हैं और फैन्स सीएसके के कप्तान के भविष्य को लेकर तमाम तरह की अटकलें लगा रहे हैं। सीएसके को टूर्नामेंट के पहले मुकाबले में रॉयल चैलेंजर्स बैंगलोर से भिड़ना है।दरअसल, एमएस धोनी ने अपने सोशल मीडिया अकाउंट पर एक पोस्ट शेयर किया है। माही ने पोस्ट में लिखा, नए सीजन और नए रोल के लिए काफी बेकरार हूं। जुड़े रहिए।ठ माही के इस पोस्ट ने फैन्स के बीच खलबली मचा दी है। सोशल मीडिया पर धोनी ट्रेड कर रहे हैं और फैन्स सीएसके के कप्तान के भविष्य को लेकर तमाम तरह की अटकलें लगा रहे हैं। फैन्स को यह चिंता भी सताने लगी है कि आईपीएल 2024 में धोनी बतौर खिलाड़ी मैदान पर उतरेंगे भी या नहीं।

यूपी वॉरियर्स की सबसे महंगी खिलाड़ी हुई टूर्नामेंट से बाहर, फ्रेंचाइजी ने किया रिप्लेसमेंट का एलान

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। महिला प्रीमियर लीग 2024 का 11वां मैच यूपी वॉरियर्स और रॉयल चैलेंजर्स बैंगलोर के बीच सोमवार को खेला गया, जिसमें आरसीबी को 23 रन से जीत मिली। इस मैच के बीच यूपी वॉरियर्स को बड़ा झटका लगा। यूपी वॉरियर्स टीम की एक स्टार ओपनर चोट के चलते पूरे टूर्नामेंट से बाहर हो गई हैं। इसकी जानकारी यूपी वॉरियर्स फ्रेंचाइजी ने अपने एक्स पर जानकारी दी और खिलाड़ी के रिप्लेसमेंट का एलान भी कर दिया है।महिला से जीत मिली। इस मैच के बीच यूपी वॉरियर्स को बड़ा झटका लगा। यूपी वॉरियर्स टीम की एक स्टार ओपनर चोट के चलते पूरे टूर्नामेंट से बाहर हो गई है।दरअसल, यूपी वॉरियर्स की टीम को महिला प्रीमियर लीग 2024 के बीच बड़ा झटका लगा है 2024 ऑक्शन में यूपी वॉरियर्स ने जिस खिलाड़ी पर करोड़ों रुपये खर्च किए थे, वह चोट के चलते पूरे टूर्नामेंट से बाहर हो गई है। ये स्टार खिलाड़ी और कोई नहीं वृंदा दिनेश है, जिन्हें टीम ने 1.8 करोड़ रुपये में अपने साथ जोड़ा था।महिला प्रीमियर

प्रीमियर लीग 2024 का 11वां मैच यूपी वॉरियर्स और रॉयल चैलेंजर्स बैंगलोर के बीच सोमवार को खेला गया जिसमें आरसीबी को 23 रन

लीग ने अपने ऑफिशियल अकाउंट पर यह जानकारी दी कि यूपी वॉरियर्स टीम की वृंदा दिनेश पूरे सीजन से बाहर हो गई है।

जेम्स एंडरसन ने चमकाए एब्स तो स्टोक्स ने धर्मशाला में लगाई डुबकी

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

धर्मशाला। भारत-इंग्लैंड टेस्ट मैच के लिए धर्मशाला पहुंची टीमों के खिलाड़ियों ने सोमवार को दिनभर प्रकृतिक नजारों का आनंद लिया। वहीं इंग्लैंड के खिलाड़ियों व कप्तान बेन स्टोक्स ने मांझी खड्ड खनियारा

में स्विमिंग भी की और कंडी, मांझी पटोला में दौड़ लगाई। 7 मार्च से 11 मार्च तक भारत इंग्लैंड टेस्ट मैच के लिए धर्मशाला पहुंचे खिलाड़ियों ने यहां की खूबसूरती का खूब आनंद लिया।भारत और इंग्लैंड टीम खिलाड़ियों को मैक्लोडगंज खूब पसंद आ रहा है। रविवार रात और सोमवार को दिन के समय भी टीम खिलाड़ी मैक्लोडगंज और धर्मकोट घूमने पहुंचे थे। खिलाड़ियों ने जहां प्रशंसकों के साथ फोटो खिंचवाई, वहीं फैन्स द्वारा की गई सेल्फी लेने के आग्रह को भी स्वीकारा। भारत और इंग्लैंड के बीच पांचवां टेस्ट मैच 7 मार्च से खेला जाना है।यहां पहुंचे भारत और इंग्लैंड टीम खिलाड़ियों को मैक्लोडगंज खूब पसंद आ रहा है। रविवार रात और सोमवार को दिन के समय भी टीम खिलाड़ी मैक्लोडगंज और धर्मकोट घूमने पहुंचे थे। खिलाड़ियों ने जहां प्रशंसकों के साथ फोटो खिंचवाई वहीं फैन्स द्वारा की गई सेल्फी लेने के आग्रह को भी स्वीकारा। भारतीय खिलाड़ी कुलदीप यादव रविवार रात धर्मकोट पहुंचे थे, जहां उन्होंने प्रशंसकों के साथ फोटो खिंचवाई।सोमवार को मैक्लोडगंज घूमने पहुंचे इंग्लैंड के खिलाड़ी वापिस आते समय रोपवे की यात्रा करते हुए निकले। रविवार को हालांकि मौसम खराब था।

स्मृति मंधाना-पैरी ने मचाया बल्ले से कोहराम, एलिसा हीली की धांसू पारी भी नहीं आई यूपी के काम

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। महिला प्रीमियर लीग 2024 के 11वें मैच में रॉयल चैलेंजर्स बैंगलोर ने यूपी वॉरियर्स को 23 रन से शिकस्त दी। पहले बल्लेबाजी करते हुए आरसीबी ने कप्तान स्मृति मंधाना की 80 और

एलिसा पैरी की नाबाद 58 रन की पारी के बूते 20 ओवर में 3 विकेट खोकर स्कोर बोर्ड पर 198 रन लगाए। इसके जवाब में कप्तान एलिसा हीली की दमदार पारी के बावजूद यूपी की टीम 8 विकेट खोकर 175 रन ही बना सकी।199 रन के लक्ष्य का पीछा करने उतरी यूपी वॉरियर्स की शुरुआत अच्छी रही। किरण नवगिरे के साथ मिलकर कप्तान एलिसा हीली ने पहले विकेट के लिए 47 रन जोड़े। किरण 18 रन बनाकर आउट हुईं। चमीरा अटापट्टू भी बल्ले से कुछ खास कमाल नहीं दिखा सकीं और सिर्फ 8 रन बनाकर चलती बनीं। ग्रैस हैरिस और श्वेता सहरावत ने भी अपने प्रदर्शन से निराश किया।हालांकि, कप्तान हीली एक छोर संभालकर खड़ी रहीं और उन्होंने टूर्नामेंट में अपना पहला अर्धशतक जमाया। हीली 38 गेंदों पर 55 रन बनाकर आउट हुईं। दीप्ति शर्मा ने 22 गेंदों पर 33 और पूनम खेमनार ने 24 गेंदों पर 31 रन जड़ते हुए टीम को जीत दिलाने की भरपूर कोशिश की, पर अंत में बाजी आरसीबी के हाथ लगी। गेंदबाजी में बैंगलोर की ओर से जॉजिया वेयरहम और सोफी मोलिनक्स ने दो-दो विकेट झटके।टॉस गंवाकर पहले बल्लेबाजी करने उतरी आरसीबी की शुरुआत जानदार रही। मेघना और स्मृति मंधाना ने तूफानी अंदाज में पारी का आगाज किया और पहले विकेट के लिए 5.3 ओवर में 51 रन जोड़े। मेघना 28 रन बनाकर आउट हुईं। हालांकि, मंधाना के बल्ले से चौके-छक्कों की बारिश जारी रही और उनको दूसरे छोर से एलिसा पैरी का बढ़िया साथ मिला।मंधाना-पैरी ने दूसरे विकेट के लिए 95 रन जोड़े। पैरी ने 37 गेंदों पर 4 चौके और इतने ही छक्कों की मदद से 58 रन कूटे। वहीं, आरसीबी की कप्तान ने 50 गेंदों पर 10 चौके और तीन गगनचुंबी छक्के उड़ाते हुए 80 रन ठोके। अंतिम ओवरों में ऋचा घोष ने 10 गेंदों पर नाबाद 21 रन बनाए, जिसके बूते बैंगलोर 20 ओवर में 3 विकेट खोकर स्कोर बोर्ड पर 198 रन लगाने में सफल रही।

पुराने रंग में लौट आए हैं पंत बेंगलुरु में एक हाथ से लगाए लंबे-लंबे सिक्स

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। अगर आप भी ऋषभ पंत की विस्फोटक बैटिंग और उनके बल्ले से निकलने वाले लंबे-लंबे सिक्स के दीवाने हैं, तो यह खबर आपके काम की है। आईपीएल 2024 के आगाज से पहले पंत अपने पुराने रंग में लौट दिल्ली को टूर्नामेंट के अपने पहले मुकाबले में पंजाब किंग्स से भिड़ना है।ऋषभ पंत आईपीएल 2024 में खेलते हुए नजर आएंगे यह बात पहले ही तय हो चुकी है। हालांकि, पंत बतौर बल्लेबाज टूर्नामेंट में रंग जमाते हुए दिखाई देंगे। खबरों की मानें, तो पंत को एनसीए की

आए हैं। विकेटकीपर बल्लेबाज का एक वीडियो सोशल मीडिया पर जमकर ट्रेड कर रहा है, जिसमें पंत बेंगलुरु में एक हाथ से छक्के लगाते हुए दिखाई दे रहे हैं।ऋषभ पंत आईपीएल 2024 में खेलते हुए नजर आएंगे यह बात पहले ही तय हो चुकी है। हालांकि पंत बतौर बल्लेबाज टूर्नामेंट में रंग जमाते हुए दिखाई देंगे। पंत का एक वीडियो सोशल मीडिया पर काफी तेजी से वायरल हो रहा है। वीडियो में पंत एक हाथ से सिक्स लगाते हुए दिख रहे हैं। तरफ से पूरी तरह से फिट होने का सर्टिफिकेट जल्द ही मिलने वाला है। इस बीच, पंत का एक वीडियो सोशल मीडिया पर काफी तेजी से वायरल हो रहा है।वीडियो में पंत एक हाथ से सिक्स लगाते हुए दिख रहे हैं। बता दें कि पंत एक हाथ से छक्का जमाने के लिए काफी मशहूर हैं और यह काम वह तब कर पाते हैं जब पूरी तरह से लय में होते हैं। यही वजह है कि पंत का यह वीडियो फैन्स और दिल्ली कैपिटल्स के लिए काफी राहत लेकर आया है।

पाकिस्तान क्रिकेट इस तरह नहीं चल सकता है. इंजमाम उल हक ने पीसीबी पर जमकर निकाली भड़ास

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। पाकिस्तान के पूर्व कप्तान इंजमाम उल हक ने टीम के पिछले है।पाकिस्तान क्रिकेट टीम को हाल ही में ऑस्ट्रेलिया के हाथों टेस्ट सीरीज में 0-3 और न्यूजीलैंड के

कुछ खराब नतीजों के कारण मोहम्मद हफीज को टीम निदेशक पद से हटाए जाने के बाद देश के क्रिकेट बोर्ड पर जमकर भड़ास निकाली है। इंजमाम ने कहा कि प्रशासनिक भूमिका निभा रहे पूर्व खिलाड़ियों पर निशाना साधना सही नहीं है जबकि अधिकारी राष्ट्रीय टीम के प्रदर्शन के लिए जिम्मेदारी उठाने से इंकार कर रहे हैं।इंजमाम उल हक ने पाकिस्तान क्रिकेट टीम के कुछ खराब नतीजों के कारण मोहम्मद हफीज को टीम निदेशक के रूप में हटाए जाने के बाद पाकिस्तान क्रिकेट बोर्ड पर जमकर भड़ास निकाली है। इंजमाम ने कहा कि प्रशासनिक भूमिकाओं में पूर्व खिलाड़ियों पर निशाना साधना सही नहीं है क्योंकि राष्ट्रीय टीम के प्रदर्शन के लिए कोई अधिकारी जिम्मेदारी नहीं उठा रहा हाथों टी20 इंटरनेशनल सीरीज में 1-4 की शिकस?त सहनी पड़ी थी। इसके बाद पीसीबी ने मोहम्मद हफीज से दूरी बना ली थी। हफीज का अनुबंध शुरुआत में छोटे समय के लिए था, जो न्यूजीलैंड में टी20 इंटरनेशनल सीरीज के बाद समाप्त हुआ। खेल मंत्रालय ने लंबी अवधि समझौते की सिफारिश से इंकार कर दिया था।इंजमाम उल हक ने पीसीबी से गुजारिश की है कि वो खिलाड़ियों की इज्जत करना शुरू करे। 'पीसीबी चेयरमैन बेशक उच्च इज्जतदार पद है, लेकिन शीर्ष बोर्ड अधिकारियों से पूर्व कप्तानों और दिग्गजों को उतनी ही इज्जत नहीं मिलती है।इंजमाम ने आरोप लगाया कि हितों के टकराव के आरोपों के दौरान उनका बोर्ड से विवाद हुआ, लेकिन पूर्व पीसीबी चेयरमैन जका अशरफ की तरफ से उन्हें कोई इज्जत नहीं मिली।

इस सप्ताह की शुरुआत प्रसन्नता के साथ होगी। लेकिन बातचीत में संवत रहें। शिक्षा से जुड़े काम पर ध्यान देने की आवश्यकता है। धैर्य रखना होगा। भागदौड़ बनी रहेगी।	इस सप्ताह आत्म संवत रहने की आवश्यकता है। मन परेशान रहेगा। गुस्सा पर नियंत्रण रखना होगा। परिवार का साथ मिलेगा। लाभ के	मन में आशा-निराशा बनी रहेगी। नकारात्मक विचारों से बचें। स्वास्थ्य का ध्यान रखने की आवश्यकता है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे। नौकरी में कार्यभार में बढ़ोतरी	सप्ताह के शुरूआत से वाणी में मधुरता रहेगी, लेकिन धैर्यशीलता बनाए रखने की कोशिश करें। शिक्षा से जुड़े कामों में सफलता मिलेगी। संतान के स्वास्थ्य का ध्यान रखना
सप्ताह के पहले दिन से मन में उतार-चढ़ाव बना रहेगा। नौकरी में तरक्की मिलने की संभावना है। शासन सत्ता का योग बन रहा है। भवन सुख मिलेगा। शिक्षा से जुड़े काम में	इस सप्ताह कार्यक्षेत्र में मेहनत ज्यादा होगी। परिवार की जिम्मेदारी बढ़ेगी। नौकरी में कार्यभार बढ़ेगा। मन परेशान हो सकता है। स्वभाव में	नौकरी में अफसरों का सहयोग मिलेगा, स्थान परिवर्तन भी हो सकता है। वाणी में कठोरता का भाव रहेगा, बातचीत में संयत रहें। वस्त्रों	इस सप्ताह परिवार के साथ धार्मिक यात्रा के योग बन रहे हैं। माता का सहयोग भी प्राप्त होगा। आत्मविश्वास बहुत रहेगा। ज्यादा उत्साही होने से बचें।
नौकरी में तरक्की होने की संभावना है। आत्मविश्वास बढ़ेगा। धर्म के प्रति श्रद्धाभाव बना रहेगा। मानसिक शांति रहेगी। गुस्सा पर काबू रखें।	परिवार में हंसी-खुशी का माहौल रहेगा। स्वास्थ्य का ध्यान रखना होगा। आत्मविश्वास बहुत रहेगा। नकारात्मक विचारों से बचाव	मन खुश रहेगा। आत्मविश्वास में कमी रहेगी। मानसिक शांति रहेगी लेकिन असंतोष भी रहेगा। परिवार में शांति बनी रहेगी। पिता का सहयोग मिलेगा।	पारिवारिक जिम्मेदारी बढ़ सकती हैं। मान-सम्मान बढ़ेगा। नौकरी में पदोन्नति के योग हैं। आत्मविश्वास बन रहेगा। शिक्षा से जुड़े काम सफल होंगे।

सम्पादकीय

इलेक्टोरल बॉन्ड पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला अहम, पार्टियों का खर्च निरंकुश

सुप्रीम कोर्ट ने भले ही चुनावी बॉन्ड पर रोक लगा दी हो, लेकिन चुनाव सुधार के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।दुनिया के बड़े लोकतांत्रिक देशों में शायद भारत अकेला देश है, जहां चुनावी चंदे की कोई सीमा तय नहीं है और पार्टी के खर्चे पर भी किसी तरह की कोई रोक-टोक नहीं है। चंदे और खर्चे की हदबंदी किए बिना चुनावों में नोटबंदी की कल्पना नहीं की जा सकती। सुप्रीम कोर्ट ने भले ही चुनावी बॉन्ड पर रोक लगा दी हो, लेकिन चुनाव सुधार के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। सवाल उठता है कि क्या हम अमेरिका और यूरोप के देशों से सीख नहीं ले सकते हैं ब्रिटेन में कोई भी दल चुनाव में एक सीट पर तीस हजार पाउंड (करीब तीस लाख रुपये) से ज्यादा खर्च नहीं कर सकता। इसी तरह, वहां कोई दानदाता (व्यक्ति हो या कंपनी) एक साल में साढ़े सात हजार पाउंड से ज्यादा का दान नहीं दे सकता। उससे ज्यादा दान देने पर उसकी पहचान को सार्वजनिक किया जाना जरूरी है। जर्मनी में अधिकतम चुनावी चंदे की सीमा दस हजार यूरो सालाना है। उससे ज्यादा चंदा देने पर पार्टी विशेष को पहचान चाहिए। ऐसा होने पर कालेधन पर रोक लगने की गारंटी तो नहीं है, लेकिन कुछ हद तक अंकुश तो लगाया ही जा सकता है।दुनिया के बहुत से देशों में सार्वजनिक निधि से चुनाव करवाए जाते हैं। एक सुझाव दिया गया है कि चुनाव आयोग जनता के पैसों से चुनाव करवाए। क्राउड फंडिंग की तर्ज पर भारत के लोग या कंपनियां चुनाव फंड में योगदान करें। इससे जितना पैसा जमा हो, उतनी ही रकम भारत सरकार अपनी झोली से दे। फिर यह पैसा अलग-अलग दलों में बांटा जाए। पैसे का आवंटन पिछले लोकसभा चुनावों में मिले वोट और सीटों, उम्मीदवारों के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामलों तथा वोटरों की संख्या के आधार पर किया जा सकता है। राष्ट्रीय दलों और क्षेत्रीय दलों के लिए अलग-अलग व्यवस्था की जा सकती है। इस योजना का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि चंदा देने वाला आम वोटर भी अपनी जिम्मेदारी समझेगा। उसे लगेगा कि सारी प्रक्रिया में वह खुद शामिल है और उसकी जेब का पैसा लगा है। इससे चुनाव में स्वच्छ छवि के लोग सामने आएंगे, नई पीढ़ी को मौका मिलेगा और

बतानी पड़ती है। बहुत से अन्य देशों में छोटे दानदाताओं के नाम उजागर नहीं किए जाते, लेकिन बड़े दानदाताओं की पहचान जरूरी है। कहा जाता है कि एक राजनेता कालेधन के जरिये ही विधानसभा या लोकसभा पहुंचता है। इस समय हमारे देश में एक उम्मीदवार लोकसभा चुनाव में 75 से 90 लाख रुपये और विधानसभा चुनाव में 40 लाख रुपये खर्च कर सकता है। वैसे तो कागजों में उम्मीदवार इससे आधी रकम ही चुनावी खर्च के रूप में दिखाते हैं, लेकिन हकीकत बच्चा-बच्चा जानता है। ऐसे में, चुनाव आयोग को चुनावी खर्च सीमा बढ़ानी चाहिए और उसे महंगाई दर से भी जोड़ा जाना इससे लोकतंत्र ही मजबूत होगा। यूरोप के हॉलैंड, नॉर्वे, स्वीडन जैसे देशों में यह प्रयोग सफलतापूर्वक चल रहा है।पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एस. वाई. कुरैशी का सुझाव है कि राष्ट्रीय चुनाव कोष बनाया जा सकता है, जिसमें कॉरपोरेट जगत चंदा दे सकता है। फिर यह पैसा चुनाव आयोग अलग-अलग दलों के बीच बांट सकता है। वैसे बड़े उद्योगपतियों ने पहले ही कॉरपोरेट फंड बना रखा है, जिसके जरिये अलग-अलग दलों को चंदा दिया जाता रहा है। पिछले साल ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की रिपोर्ट में बताया गया कि भारी-भरकम चंदा देने वालों का सत्तारूढ़ दलों से जुड़ाव होता है और उन्हें मनचाहे लाभ मिलते हैं।

आंकड़ों को दिशासूचक की तरह लेने की जरूरत, अब भी सामने खड़ी हैं चुनौतियां

विभिन्न सर्वे बताते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था चमत्कारिक ढंग से आगे बढ़ रही है, जो अच्छी बात भी है। लेकिन आंकड़ों को दिशासूचक की तरह लेने की जरूरत है, क्योंकि सामने खड़ी चुनौतियां उन वास्तविकताओं की तरह हैं, जिन्हें हम नजर अंदाज नहीं कर सकते।विभिन्न सर्वे बताते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था चमत्कारिक ढंग से आगे बढ़ रही है, जो अच्छी बात भी है। लेकिन आंकड़ों को दिशासूचक की तरह लेने की जरूरत है, क्योंकि सामने खड़ी चुनौतियां उन वास्तविकताओं की तरह हैं, जिन्हें हम नजर अंदाज नहीं कर सकते।एक पुरानी कहावत है कि आमतौर पर लोग उस बात पर तुरंत विश्वास कर लेते हैं, जिसे वे सच मानना चाहते हैं। हरेक कुछ महीनों में भारत की सार्वजनिक बहस में यही सच सामने आता है। अर्थव्यवस्था की स्थिति के बारे में आंकड़े सामने आते ही बयानबाजी शुरू हो जाती है। बेहद ध्रुवीकृत राजनीतिक अखाड़े में समर्थक वाह-वाह करते हुए और शक्की अविश्वास में बहस करते हुए पाए जाते हैं। रह गए संशयवादी, तो वे संशय ही करते रहते हैं।हाल ही में देश और दुनिया को बताया गया कि इस वर्ष अर्थव्यवस्था पांच जनवरी को पूर्वानुमानित 7.3 फीसदी नहीं, बल्कि 7.6 फीसदी की दर से विकास करेगी। उत्कृष्ट प्रदर्शन ने सबको हैरान कर दिया। दिसंबर, 2023 तक रिजर्व बैंक के पेशेवर पूर्वानुमान सर्वे ने वित्त वर्ष 2023-24 के लिए वास्तविक जीडीपी 6.0-6.9 फीसदी के दायरे में रहने की उच्चतम संभावना जताई थी। विकास दर में यह वृद्धि पिछले वर्षों और तिमाहियों के आंकड़ों में संशोधन के बाद हुई है, जिसके तहत वर्ष 2022-23 की जीडीपी विकास दर कम रही और मौजूदा वर्ष की पहली तिमाही के आंकड़ों में यह ऊपर दिखी। इसमें यह खुलासा भी किया गया कि अक्तूबर और दिसंबर, 2023 के बीच अर्थव्यवस्था 8.4 फीसदी की दर से बढ़ी। जीडीपी की 8.4 फीसदी दर पर बहुत ज्यादा उत्साह पैदा हुआ, जबकि इस अवधि के लिए सकल मूल्य वर्धन (जीवीए) 6.5 फीसदी था। कम जीवीए को सब्सिडी पर कम खर्च और करों में वृद्धि के रूप में विश्लेषित किया जाता है। जीवीए में करों को जोड़कर और उसमें से सब्सिडी घटाने पर जीडीपी का आंकड़ा निकाला जाता है। दिलचस्प बात यह है कि तीन तिमाहियों में जीवीए क्रमिक रूप से 8.2 फीसदी से घटकर 6.5 फीसदी हो गया है।अर्थव्यवस्था की स्थिति पर बहसें अक्सर आंकड़ों की बारीकियों में खो जाती हैं। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था ने उम्मीद से ज्यादा और पूर्वानुमानों से बेहतर प्रदर्शन किया है। यह बुनियादी संरचनाओं पर खर्च और जीएसटी एवं प्रत्यक्ष करों के आंकड़ों से भी स्पष्ट होता है। जीडीपी के अनुमान से विनिर्माण एवं निर्माण के क्षेत्र में भी मजबूत वृद्धि का पता चलता है। आय में वृद्धि और शेयर सूचकांकों की शानदार उछाल से इसकी पुष्टि होती है। यह सब स्वीकारते हुए भी कहना होगा कि सब कुछ ठीक नहीं है। ये अनुमान विकास की रफ्तार और गति में मंदी का भी संकेत देते हैं। वर्ष के अंत में 7.6 फीसदी का अनुमान बताता है कि चौथी तिमाही में जीडीपी वृद्धि दर छह फीसदी के आस-पास होगी। सामाजिक व्यवस्था के अन्य तत्वों की तरह आर्थिक विकास भी औसत के नियम से नियंत्रित होता है। क्या यह गिरावट है, सांख्यिकीय प्रभाव है या कोई संरचनात्मक मुद्दा है, जिसे विकास को बनाए रखने के लिए संबोधित किया जाना चाहिए?आंकड़े बताते हैं कि विकास की इस गति में हर क्षेत्र शामिल नहीं है। भले ही जीडीपी 7.6 फीसदी की दर से विकास कर रहा हो, पर तथ्य यह है कि निजी खपत मुश्किल से तीन फीसदी की दर से बढ़ रही है, जो चिंता का विषय होना चाहिए। खपत के आंकड़े इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि जीडीपी में खपत का योगदान 55.6 फीसदी होता है। ऐसे में सवाल उठता है कि खपत में गिरावट एक मौसमी मुद्दा है या खर्च करने की क्षमता में बुनियादी गिरावट है।हालांकि पीड़ा को कम करने और खपत बढ़ाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप किया गया है। लेकिन 81 करोड़ लोगों को मुफ्त अनाज, 50 करोड़ लोगों को स्वास्थ्य सेवा, 16 करोड़ से ज्यादा लोगों को ग्रामीण रोजगार के अलावा धन हस्तांतरण, घर एवं उपभोग्य सामग्रियों के प्रावधान जैसे कल्याणकारी कार्यक्रमों के आक्रामक विस्तार के बावजूद खपत घट रही है। इसका असर कम लागत वाली वस्तुओं की बिक्री एवं उपभोक्ता वस्तुओं तथा टिकाऊ निर्माताओं की कमाई पर दिख रहा है। दरअसल, अंतरिम बजट के पहले उद्योग मंडलों ने कल्याणकारी लाभों के विस्तार की बात की थी।जीडीपी के अनुमानों में अन्य चिंताजनक आंकड़े भारत के दो सबसे बड़े नियोक्ताओं से संबंधित हैं। पहला सेवा क्षेत्र, जो बड़ी संख्या में नए रोजगार पैदा करता है और दूसरा कृषि, जो संपूर्ण कार्यबल के 45 फीसदी से ज्यादा कार्यबल को रोजगार देती है। कृषि में तीसरी तिमाही में संकुचन दिखाई दिया और वर्ष के अंत में उसकी वृद्धि दर 0.7 फीसदी हो सकती है। सेवा क्षेत्र भी पिछड़ गया है और दोहरे अंक की वृद्धि के ऐतिहासिक स्तर से काफी नीचे रुका हुआ है।कुछ अन्य मुद्दों पर भी ध्यान दिए जाने की जरूरत है। देश की जनसांख्यिकी से पता चलता है कि युवा कार्यबल अब ज्यादातर उत्तर के सबसे आबादी वाले राज्यों में रहते हैं, जबकि विकास, रोजगार, आय और खपत का झुकाव भारत के दक्षिणी और पश्चिमी राज्यों की ओर है। 60 हजार नौकरियों के लिए 48 लाख युवा आवेदन देते हैं, राज्यों में अक्सर पेपर लीक के मामले सामने आते हैं, इंजीनियरिंग एवं मैनेजमेंट कॉलेजों में कैंपस प्लेसमेंट में भारी गिरावट आई है। इन सबके मद्देनजर मूल्यांकन और सुधारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता है।इसके अलावा, दुनिया भर के निगम जेनरेटिव एआई और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करने वाले सिस्टम में करीब 200 अरब डॉलर का निवेश कर रहे हैं। वित्तीय क्षेत्र और आईटी सेवाएं भारत के शिक्षित युवाओं के सबसे बड़े नियोक्ताओं में से हैं। वर्ष 2023 में दुनिया भर के बैंकों ने 60 हजार से ज्यादा नौकरियां खत्म कर दीं। पिछले हफ्ते नैसकॉम के चेयरमैन ने जेनरेटिव एआई द्वारा बीपीओ कर्मियों की जगह लेने के जोखिमों पर चिंता जताई। चिप निर्माता कंपनी एनवीडिया के प्रमुख जेन्सेन हुआंग ने घोषणा की कि एआई कोडिंग को खत्म कर देगा। पश्चिम में प्रौद्योगिकी को तेजी से अपनाने से भारतीय अर्थव्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न होता है।आर्थिक विकास एवं नीति के लिए संदर्भ महत्वपूर्ण होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था जो हम जानते हैं और जो हम जानते हुए भी आंख मूंद कर बैठे हैं, के बीच झूल रही है। आंकड़ों को दिशासूचक की तरह लिया जाना चाहिए। आर्थिक विकास की गति, चुनौतियां, बाधाएं इत्यादि सब पर बहस होनी चाहिए। याद रखें, चुनौतियों का दबाव जितना ज्यादा होगा, अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन उतना ही निखरता जाएगा।

सत्ताकांक्षा में लिपटा नया 'परिवार नियोजन

हर व्यक्ति अपनी एक छोटी पार्टी बनाता है और उसे प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की तरह चलाने लगता है। उसका नियंता वह स्वयं और बाद में उसकी संताने इसका चार्ज ले लेती हैं। मतदाता के पास इतना ही विकल्प रहता है कि वह इस परिवार को चुने या उस परिवार को।महा उपनिषद' में हमारे ऋषियों ने जिस उदात्त और वैश्विक भाव से 'वसुधैव कुटुम्बकम' की उक्ति कही होगी, तब उन्होंने शायद ही सोचा होगा कि हजारों साल बाद भारत में इस कौटुंबिक भाव का रूपातंरण राजनीतिक परिवारवाद में हो जाएगा। परिवार सत्ता पर काबिज होने और उसे कायम रखने तथा ऐसा करने वाले राजनीतिक निशाने पर होंगे।जाहिर है एक समय ऐसा भी आएगा कि सत्ता का संघर्ष परिवारवाद और गैरपरिवारवाद के बीच केन्द्रित होने लगेगा। राजनेता इसे ही अपनी तलवार और ढाल दोनो बनाने में कामयाब होंगे। दूसरे शब्दों में कहें तो यह सत्ता के खोल में लिपटा नया परिवार नियोजन है, जिसमें परिवार की हदें और स्वार्थ राजनेता अपने अपने हिसाब और सुविधा से तय कर रहे हैं। हाल में बिहार की राजधानी पटना में आयोजित इंडिया गठबंधन की महारैली ने लालूप्रसाद यादव ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के परिवार पर सवाल उठाए तो जवाब में मोदी ने कहा कि सारा देश ही उनका परिवार है। या यूं कहें कि मोदी ही देश हैं और देश ही उनका परिवार है। इसी तर्ज पर बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार, जिन्होंने राजनीतिक पलटीमारी में नए मानदंड कायम किए हैं, ने कहा कि सारा बिहार ही मेरा परिवार है।अब इसी सिलसिले को सांसद, विधायक, पार्षद और पंच तक ले जाएं तो हर कोई अपने क्षेत्राधिकार मंर एक 'परिवार के पोषण' का बोझ लिए चल रहा है, क्योंकि इसी परिवार में वोट के बीजाणु छिपे हुए हैं। अर्थात् यह नया परिवारवाद असल में वोटवाद का परिवारीकरण है। गुजरे समय में राजपरिवारों में सत्ता संघर्ष हुआ करता था। राजा का बेटा ही राजा बनता था। मुगलों के जमाने में तख्त के लिए एक बेटा अपने ही सगे भाइयों को मौत के घाट उतारने में नहीं हिचकता था। बाद में अंग्रेज आए तो सत्ता संचालन का नया कंसेप्ट लेकर आए, जो मूलतः वशंवादी होते हुए भी उपनिवेशों में पेशेवर लोगों के भरोसे ज्यादा था। आजादी के बाद भारत में लोकतंत्र कायम हुआ तो सामंती परिवारवाद ने भी नया चोला पहन लिया।कुछ राजपरिवारों ने लोकतांत्रिक परिवारवाद अपनाकर अपनी भौतिक सत्ता कायम रखी तो इसी के साथ जमीनी संघर्ष से कई ऐसे नए चेहरे उभरे कि जिन्होंने अपने लंबी जद्दोजहद के बाद मिली सत्ता की पूंजी अपनी भावी पीढ़ी के नाम इन्वेस्ट कर दी। 90 के दशक में उभरा यह परिवारवाद राजपरिवारों के दैवी परिवारवाद से अलग सत्ता प्रसूत और सत्ता केन्द्रित नया परिवारवाद था, जो राजनीतिक दलों की शक्ल में अब अलग अलग राज्यों में अलग अलग तरह से प्रस्थापित हो चुका है।काफी हद तक लोकमान्य यह परिवारवाद कहीं अपनी सत्ता को बचाने के लिए है तो कहीं सत्ता को पाने के लिए है। सलोना।'परिवार को सीमित रखने का यह राजनीतिक आग्रह देश में इमर्जेंसी के दौरान सरकारी दुराग्रह में बदल गया।

बदल रहा है लोकतंत्र का विचार, 'रामराज्य' में नैतिक मूल्यों के साथ सामुदायिक कल्याण पर जोर

लोकतंत्र में सिर्फ संख्या के आधार पर व्यवस्था को रूप दिया जाता है। लेकिन नैतिक मूल्यों की आवश्यकता का केंद्र 'रामराज्य' में ही मिलता है।चुनाव की धुकड़-धुकड़ में सन्नाटा-सा छाया है! 'लोकतंत्र के पर्व' की दाल केवल चुनावी भट्ठी में ही गलती है! कृषि-प्रधानता छोड़, देश चुनाव-प्रधान हो गया है, इसलिए बारहों महीने रात-दिन चुनावी रणनीतियां बनती रहती हैं। देश किसी भी अभाव में चल सकता है, लोकतंत्र के बिना नहीं! मगर स्वतंत्रता के बाद देश के भीतर विवादों और अलगाववाद के किले खड़े करते-करते लोकतंत्र स्वयं लड़खड़ाने लगा है और अपना जीवंत विकल्प मांगने लगा है। संयोग है कि इसी बीच राष्ट्रीय परिषद की बैठक में भाजपा ने अयोध्या के राम मंदिर को देश के लिए 'ऐतिहासिक और अनुपम उपलब्धि' बताते हुए नए कालचक्र के श्रीगणेश के साथ भारत में अगले एक हजार वर्षों के लिए रामराज्य की स्थापना का एक संकल्प पारित किया है।भारत की समृद्धि से भरी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धारा में शासन प्रबंधन के दो मॉडल प्रकट होते हैं : लोकतंत्र और रामराज्य। लोकतंत्र को स्वतंत्रता और समानता के प्रकाश के रूप में पूजा गया है। दूसरी ओर, रामराज्य मूल रूप से भारतीय संस्कृति की सच्ची आत्मा को प्रतिष्ठित करता है तथा एक समरस और आदर्श शासन व्यवस्था प्रदान करता है। लोकतंत्र से जुड़े खतरों की गहरी पड़ताल करें, तो भारतीय संदर्भ में रामराज्य एक उपयुक्त और सार्थक विकल्प के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है।लोकतंत्र वैश्विक रूप से अपनाए जाने वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं में से एक है, जिसे आदर्श शासन व्यवस्था माना जाता है और सैद्धांतिक रूप से यह आदर्श व्यवस्था है भी। लेकिन समय का पहिया घूमता है और किसी व्यवस्था में बाह्य तत्वों का शनैः शनैः अतिक्रमण उसे निर्मूल कर देता है। यही लोकतंत्र के साथ भी हुआ है और निरंतर हो रहा है।स्वयं को लोकतंत्र का संरक्षक मानने वाले पश्चिमी और यूरोपीय देशों के लोकतंत्र में गैर-लोकतांत्रिक तत्वों का प्रदूषण इस हद तक फैल चुका है कि वह दिन दूर नहीं, जब इन देशों के मूल नागरिक इस पर पछताएंगे। भारत में लोकतंत्र-प्रदत्त स्वच्छंदता से भौगोलिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रियाओं को ऑक्सीजन देने के लिए क्या जतन किए जा रहे हैं, इसका अनुमान कुछ राजनीतिक दलों, सामाजिक-मजहबी समूहों और व्यक्तियों के नित आने वाले वक्तव्यों से लगाया जा सकता है। भय, हिंसा, अशांति, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, विषाक्त भाषा, धमकियां, अलगाववाद, देशद्रोह, और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रदूषण सब लोकतंत्र की कोख में पलते हैं। लोकतंत्र में स्वतंत्रता, स्वच्छंदता, अभिव्यक्ति, शोषण, अधिकार आदि सब पर्यायवाची-से बन गए हैं!लोकतंत्र अब कोई पवित्र गाय नहीं रह गया है, जिसे प्यार से पाला-पोसा जाए और जिस पर गर्व किया जाए। इसके स्थान पर हम उस आदर्श शासन प्रणाली की ओर लौटें, जो सदियों से भारतीय मानस की रग-रग में जिंदा है और जिसकी कल्पना मात्र से ही हमारा रोम-रोम रोमांचित हो उठता है, जिसे हम रामराज्य कहते हैं। रामराज्य का अवतरण प्राचीन हिंदू शास्त्रों में होता है, विशेषकर रामायण में, जहां भगवान राम को न्यायपूर्ण और दयालु शासक के रूप में दिखाया जाता है, जिनके राज्य में सभी एक ही संस्कृति की छाया में रहते हैं, सब बराबर हैं, सब सुखी हैं, सब संपन्न, संतुष्ट और प्रफुल्लित हैं। रामराज्य धर्म, न्याय और करुणा के सिद्धांतों को अभिव्यक्त करता है। इसने समाज कल्याण को प्राथमिकता देने वाले दृष्टिकोण को विकसित किया है। नैतिकता और नैतिक शासन पर जोर देने से रामराज्य को भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति के रूप में उठाया जाता है।रामराज्य सामुदायिक कल्याण को सुनिश्चित करने पर जोर देता है। नीतियां और निर्णय सभी नागरिकों के कल्याण के प्रति दायित्व और समर्पण की भावना के आधार पर मार्गदर्शित होते हैं। शासन के जटिल परिदृश्य का सामना करते हुए, भारत स्वयं को जनतंत्र और रामराज्य के वादों और चुनौतियों के बीच फंसा पाता है। रामराज्य, जिसमें सामंजस्य, नैतिक नेतृत्व और सामुदायिक कल्याण पर ध्यान केंद्रित है, एक प्रेरणादायक विकल्प के रूप में प्रकट होता है, जो भारतीय सभ्यता के मूल्यों का समर्थन करता है। जनतंत्रीय तत्वों और रामराज्य में समाहित शासन-गुणों के बीच संतुलन स्थापित करने से भारत जैसे विविध संस्कृति-संपन्न राष्ट्र के सामने आईं विशेष चुनौतियों का सामना करने का मार्ग खुल सकता है।

नई स्कीम में पैसा लगाकर मुनाफा बनाने का अवस्य नए होने की वजह से आमतौर पर सस्ते होते हैं न्यू फंड ऑफर

एसेट मैनेजमेंट कंपनी जब नई म्यूचुअल फंड स्कीम लाती है, तो उसके लिए एनएफओ पेश करती है। इसके जरिये जुटाई पूंजी को एएमसी इक्विटी मार्केट, बॉन्ड या किसी और एसेट में निवेश करती हैं। इसलिए, एनएफओ पर बाजार में उतार-चढ़ाव का असर रहता है शेयर बाजारों में उतार-चढ़ाव के बीच अगर जोखिम के साथ शुरुआत में ही रिटर्न पाना चाहते हैं तो न्यू फंड ऑफर (एनएफओ) में निवेश कर सकते हैं। प्रारंभिक सार्वजनिक निर्गम (आईपीओ) की तर्ज पर म्यूचुअल फंड चलाने वाली एसेट मैनेजमेंट कंपनियां (एएमसी) भी बाजार से पैसा जुटाने के लिए एनएफओ लाती हैं। बाजार में नया पूंजी को एएमसी इक्विटी मार्केट, बॉन्ड या किसी और एसेट में निवेश करती हैं। इसलिए, एनएफओ पर बाजार में उतार-चढ़ाव का असर रहता है। इस निवेश पर मिलने वाले रिटर्न के जरिये ही कंपनियां मुनाफा कमाने की कोशिश करती हैं। इसका लाभ निवेशकों को उनकी यूनिट्स की कीमतों में बढ़ोतरी के रूप में मिलता है। इस मुनाफे का कुछ हिस्सा एएमसी खर्च और फंड मैनेजर्स की फीस के तौर पर निकल जाता है, जिसे एक्सपेंस रेश्यो भी कहा जाता है।एनएफओ में निवेश के कई लाभ होते हैं। नई स्कीम में निवेश से अपने पोर्टफोलियो में विविधता ला सकते

होने की वजह से ये आमतौर पर सस्ते हैं। इसके जरिये कंपनियां निवेशकों को अपनी किसी नई स्कीम में पैसे लगाने के लिए आमंत्रित करती हैं।एसेट मैनेजमेंट कंपनी जब नई म्यूचुअल फंड स्कीम लाती है, तो उसके लिए एनएफओ पेश करती है। इसके जरिये जुटाई हैं। हालांकि, एनएफओ खरीदने का फैसला वित्तीय लक्ष्यों, जोखिम क्षमता और निवेश रणनीति के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए, निवेश से पहले गहन रिसर्च करें। फंड मैनेजर की विशेषज्ञता का मूल्यांकन करें। -अखिल चतुर्वेदी, मुख्य कारोबार अधिकारी, मोतीलाल ओसवाल एएमसी

संक्षिप्त समाचार

रिपब्लिकन प्राइमरी चुनाव जीतने वाली पहली भारतीय-अमेरिकी महिला उम्मीदवार बनीं निक्की हेला

वाशिंगटन। अमेरिका में 5 नवंबर को राष्ट्रपति चुनाव (ळए तेंमदह 2024) है और भारतीय-अमेरिकी राष्ट्रपति पद की उम्मीदवार निक्की हेली ने पहले ही बड़ी जीत हासिल कर ली है।वाशिंगटन डीसी में पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को हराकर भारतीय-अमेरिकी राष्ट्रपति पद की उम्मीदवार निक्की हेली ने अपनी पहली रिपब्लिकन नामांकन प्रतियोगिता में जीत दर्ज की। 51 वर्षीय निक्की हेली ने अपने मुख्य प्रतिद्वंद्वी ट्रंप को पीछे छोड़ 1274 वोट (62.9झ्) के साथ जीत हासिल की। ट्रंप को महज 676 (33.2झ्) वोट हासिल हुए। इस जीत के साथ ही हेली वाशिंगटन डीसी से सभी 19 रिपब्लिकन प्रतिनिधियों पर दावा करेंगी।वाशिंगटन डीसी में पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को हराकर हेली ने अपनी पहली रिपब्लिकन नामांकन प्रतियोगिता में जीत दर्ज की। 51 वर्षीय निक्की हेली ने अपने मुख्य प्रतिद्वंद्वी ट्रंप को पीछे छोड़ 1,274 वोट (62.9झ्) के साथ जीत हासिल की। ट्रंप को महज 676 (33.2झ्) वोट हासिल हुए।रिपब्लिकन राष्ट्रपति पद के प्राथमिक चुनाव में जीत हासिल करने वाली हेली पहली महिला बनीं है। इसके अलावा डेमोक्रेटिक या रिपब्लिकन प्राइमरीज में जीत हासिल करने वाली हेली पहली भारतीय-अमेरिकी उम्मीदवार हैं। इस जीत के साथ ही हेली वाशिंगटन डीसी से सभी 19 रिपब्लिकन प्रतिनिधियों पर दावा करेंगी, जिससे उनके राष्ट्रव्यापी कुल 43 प्रतिनिधियों में योगदान होगा। हालांकि, हेली को अपने गृह राज्य दक्षिण कैरोलिना में हार का सामना करना पड़ा। इसके अलावा वह मिसौरी और इडाहो में भी वह जीत नहीं पाई।ट्रंप ने हेली की आलोचना करते हुए कहा कि उन्हें असफल यथास्थिति के समर्थकों का समर्थन प्राप्त हुआ है, जबकि हेली ने ट्रंप पर संघीय घाटे को बढ़ाने का आरोप लगाया।

नारी शक्ति वंदन सम्पन्न अभियान के तहत हुआ मैराथन दौड़

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नोएडा।नोएडा में आज सुबह गजब का नाजारा देखने को मिला जब भाजपा से जुड़ी नारी शक्ति सडक़ पर उतरीं और उन्होंने दौड़ लगाई। महिलाओं का उत्साह बढ़ाने के लिए बड़ी संख्या में भाजपा के नेता इस कार्यक्रम के दौरान मौजूद रहे। मौका था नारी शक्ति वंदन सम्पन्न अभियान के तहत मैराथन दौड़ का।नारी शक्ति वंदन संपर्क अभियान के तहत आज भाजपा महिला मोर्चा ने मैराथन दौड़ का आयोजन किया। सैकड़ों की संख्या में भाजपा नेत्रियों ने सेक्टर-27 सब मॉल से लेकर सेक्टर-18 तक दौड़ लगाई। इस मैराथन दौड़ की थीम थी एक दौड़ राष्ट्र के नाम, एक दौड़ मोदी के नाम।कार्यक्रम के संयोजक तथा भाजपा के जिला महामंत्री उमेश त्यागी व गणेश जाटव ने हरी झंडी दिखाकर मैराथन को रवाना किया। उन्होंने बताया कि कल बाइक रैली भी निकाली जाएगी। इस मौके पर मोर्चा अध्यक्ष उमेश यादव, महेश अवाना, युद्धवीर चौहान, महिला मोर्चा की अध्यक्ष शारदा चतुर्वेदी, महामंत्री शिवानी शरद, मीडिया प्रभारी नीता बाजपेयी, मंडल अध्यक्ष लोकेश कश्यप, मंडल अध्यक्ष पंकज झा के अलावा सैकड़ों की संख्या में भाजपा की महिला कार्यकर्ता मौजूद रहीं।

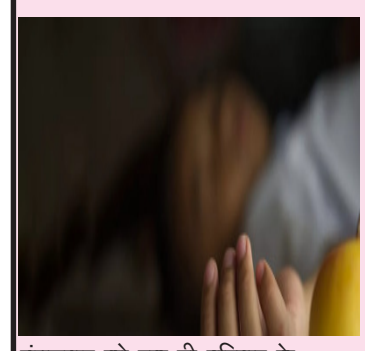

बिस्तर पर खून से सनी पड़ी बीवी-बच्चों की लाशें, किराये के घर पर लटकी मिली पति की लाश

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
कोट्टायम (केरल)। केरल के पाला से बेहद ही हैरान कर देने वाला मामला सामने आया है। यहां

मंगलवार को एक ही परिवार के पांच सदस्य किराए के घर में मृत पाए गए। मृतकों की पहचान 44 वर्षीय जैसन थॉमस, उनकी पत्नी और 10 साल से कम उम्र के तीन बच्चों के रूप में की गई है।केरल के पाला में किराए के घर में एक ही परिवार के पांच सदस्य मृत पाए गए। मृतकों की पहचान 44 वर्षीय जैसन थॉमस उनकी पत्नी और 10 साल से कम उम्र के तीन बच्चों के रूप में की गई है ।पुलिस के अनुसार जैसन को लटका हुआ पाया गया। वहीं उसकी पत्नी और बच्चों के शव खून के निशान के साथ बिस्तर पर पड़े पाए गए।पुलिस के अनुसार, जैसन को लटका हुआ पाया गया। वहीं, उसकी पत्नी और बच्चों के शव खून के निशान के साथ बिस्तर पर पड़े पाए गए। जैसन नजंडुपारा, अकलाकुन्नम के मूल निवासी थे। वे पूवारानी कोचुकोट्टारम इलाके में एक किराए के मकान में रह रहे थे। पुलिस को संदेह है कि जैसन ने कथित तौर पर अपनी पत्नी और बच्चों की हत्या करने के बाद आत्महत्या की होगी।

डीएमके नेता ए राजा ने फिर दिया विवादित बयान

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। डीएमके नेता ए राजा ने एक बार फिर विवादित बयान दिया है। उन्होंने भारत और हिंदू धर्म को लेकर बेतुका बयान दिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने भगवान श्री राम काम उपहास किया है। ए राजा ने अपने बयान में कहा कि भारत देश नहीं है। उन्होंने ये भी कहा कि ये एक उपमहाद्वीप है। राजा ने हनुमान जी की तुलना बंदर से भी की है। ए राजा के विवादित बयान के बाद बीजेपी डीएमके पर हमलावर हो गई है। साथ ही बीजेपी ने कांग्रेस को भी आड़े हाथ लिया है।डीएमके नेता ए राजा ने विवादित बयान दिया है। उनके बयान को लेकर बीजेपी ने निशाना साधा है। ए राजा ने कहा कि भारत एक देश नहीं बल्कि उपमहाद्वीप है। उन्होंने कहा कि एक राष्ट्र का मतलब एक भाषा एक परंपरा और एक संस्कृति है। भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि एक उपमहाद्वीप है।

इनर व्हील क्लब की बार्षिक बैठक में व्हीलचेयर भेंट किया गया

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नोएडा।नोएडा इनर व्हील क्लब नोएडा की वार्षिक बैठक नोएडा

सेक्टर 26 स्थित क्लब में हुई जिसका शुभारंभ मुख्य अतिथि डिस्ट्रिक्ट चेयरमैन डॉ उर्वशी मित्तल, क्लब की अध्यक्षा डॉ रितु ढिल्लन, क्लब एडवाइजर आशा वालिया ने दीप प्रज्वलित कर किया। इस अवसर पर संस्था द्वारा मिस वर्ल्ड व्हील चेयर 2015 प्रिया भार्गव, गोनिका लूथरा, रूपाली वर्मा और अचला आर्य को सम्मानित किया गया और साथ ही सेतु स्पेशल चाइल्ड स्कूल को कुछ व्हीलचेयर भी भेंट के रूप में दी और साथ ही क्लब की मैगजीन - विजन का विमोचन भी किया। कार्यक्रम में बी एस मेमोरियल पब्लिक स्कूल के बच्चों ने महिला सशक्तिकरण पर सांस्कृतिक कार्यक्रम भी पेश किया।बैठक के दौरान पिछले एक वर्ष में संस्था द्वारा एनिमल वेलफेयर के कार्यों, महिला सशक्तिकरण पर उठाए गए कदम, जीरो वेस्ट से बेंच बनवाने, शिक्षा से वंचित बच्चों को शिक्षित करने, नोएडा के विभिन्न सेक्टर में रोड सेफ्टी कन्वेक्स मिरर लगवाने जैसे किए गए कार्यों पर चर्चा की जिसकी सभी ने सराहना भी की।डॉ रितु ढिल्लन ने कहा की आज जब एक सशक्त महिला समाज को सशक्त करने को आगे बढ़ती है इसका मतलब मेरा देश उन्नति की ओर अग्रसर है। हमे गर्व है की हम बदलते भारत के साक्षी हैं।इस अवसर पर अनिता पांडे, सुमिता दास, अंजली बिंद्रा, रीता सिंह, डॉ निधि शर्मा, रुचिका जैन, मीनाक्षी नरूला आदि मौजूद रहे।

डॉ महेश शर्मा को पुनः टिकट मिलने पर हुआ जोरदार स्वागत

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नोएडा।नोएडा भारतीय जनता पार्टी 2024 लोकसभा चुनाव के प्रत्याशी पूर्व केंद्रीय मंत्री सांसद डॉक्टर महेश शर्मा का भव्य स्वागत सम्मान समारोह कार्यक्रम लोकसभा चुनाव संचालन समिति के द्वारा दादरी विधानसभा नोएडा जेवर सिकंदराबाद खुर्जा विधानसभा के कार्यकर्ताओं के द्वारा प्रत्याशी डॉक्टर महेश शर्मा जी का भव्य स्वागत कार्यक्रम भाजपा ज़िला कार्यालय तिलपता गोलचक्कर पर आयोजित किया गया कार्यक्रम की अध्यक्षता ज़िला अध्यक्ष गजेन्द्र मावी ने की कार्यक्रव का

संचालन लोकसभा संचालन समिति संयोजक पूर्व जिलाध्यक्ष प्रणीत भाटी जी ने किया भाजपा गौतमबुधनगर लोकसभा प्रत्याशी डॉक्टर महेश शर्मा जी ने कहा कि में सभी पार्टी कार्यकर्ताओं वरिष्ठ जनों का स्वागत आभार वियक्त करता हूँ पार्टी के देवतुल्य कार्यकर्ताओं के बल और देव तुल्य जनता के विश्वास पर एक बार फिर देश में मान्य नरेन्द्र मोदी जी को देश का प्रधानमंत्री बनायेंगे उसके लिये घर घर से प्रत्येक कार्यकर्ता बूथ अध्यक्ष पन्ना प्रमुख पार्टी की रीतिनीति सरकार के किये गये विकास कार्यों के पत्रको को देकर भाजपा को विजयी बनाने के लिये कार्य केरेंगे और उन्होंने कहा कि गौतमबुधनगर लोकसभा में 50 हज़ार करोड़ से अधिक जैसे ऐतिहासिक नोएडा एयरपोर्ट खुर्जा में पावर प्लांट नोएडा एयरपोर्ट से लाखों लोगों को रोजगार मिलेगा एमएलसी श्री श्रीचंद शर्मा जी ने कहा कि अबकी बार फिर तीसरी बार मोदी जी प्रधानमंत्री और अपने लोकप्रिय सांसद भी तीसरी बार देश की टॉप 3 बड़ी जीत दर्ज करायेंगे दादरी विधायक श्री तेजपाल नागर जी ने कहा कि भाजपा प्रत्याशी डॉक्टर महेश शर्मा जी लोकसभा चुनाव में ऐतिहासिक बड़ी जीत करे उसके लिये हमे बूथ तंत्र पर विजय करना होगा उसके लिए बूथ पर मीटिंग कर प्रचार र्प्सार करें खुर्जा विधायक श्री लक्ष्मीसिंह जी जिला पंचायत अध्यक्ष श्री अमित चौधरी ज़िला प्रभारी प्रमोद गुप्ता जी ने कहा हम सब कार्यकर्ता एक महीने डेढ़ महीने तक इस चुनावी समर में लग जायें इस अवसर पर मुख्य रूप से जिलाध्यक्ष गजेन्द्र मावी ने आये सभी कार्यकर्ताओं से कहा कि चुनावी बेला में प्रत्येक कार्यकर्ता अपने बूथ जीतने के लिये बूथ समिति पन्ना प्रमुख बैठक करें इस अवसर पर मुख्य रूप से क्षेत्रीय महामंत्री हरीश ठाकुर जिलाध्यक्ष गजेंद्र मावी पूर्व विधायक खुर्जा बिजेंद्र खटिक पूर्व मंत्री हरिश्चंद्र भाटी लोकसभा प्रभारी अनिल शिसोदिया प्रणीत भाटी दादरी नगरपालिका अध्यक्ष गीता पंडित मीनाक्षी सिंह जिला महामंत्री दीपक भारद्वाज मनोज गर्ग धर्मेंद्र कोरी मीडिया प्रभारी कर्मवीर आर्य पूर्व जिलाध्यक्ष रक़मसिंह भाटी शिवओम शर्मा पवन रावल पिछड़ा आयोग सदस्य बिजेंद्र भाटी देवा भाटी सुनील भाटी पवन नागर राहुल पंडित सत्यपाल शर्मा रिंकु भाटी रवि जिंदल मनोज प्रधान सुनील शर्मा गणेश जाटव मनोज भाटी आदि हजारों कार्यकर्ता ने भाजपा प्रत्याशी डॉक्टर महेश शर्मा जी के स्वागत समारोह कार्यक्रम में भाग लिया।

समस्याओं एवं ऑनलाइन उपस्थिति के विरोध में शिक्षकों ने बीआरसी पे किया प्रदर्शन

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
घोरावल। उत्तर प्रदेशीय प्राथमिक शिक्षक संघ के प्रदेशीय नेतृत्व के बैनर तले सभी विकास खंडों मे बीईओ कार्यालय पर सैकड़ों शिक्षको ने अपनी मांगो के समर्थन एवं अपने खिलाफ हो रहे शोषण के विरुद्ध खण्ड शिक्षा अधिकारी को ज्ञापन सौपा।प्रदर्शन के दौरान शिक्षकों ने हुंकार भरते हुए कहा कि शिक्षकों से शिक्षण कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य कराये जा रहे हैं, जो शिक्षक का कार्य नही है विभाग द्वारा शिक्षको पर अनावश्यक गैर शैक्षणिक कार्य जबरन थोपा जा रहा है। ब्लॉक अध्यक्ष शिवशंकर ने कहा कि शिक्षको की समस्याओं को सुलझाने के बजाय सरकार और सरकार के रहनुमा शिक्षकों को प्रयोगशाला समझ लिए है। शिक्षक का कार्य शिक्षण कार्य है न कि बच्चों का आधार बनवाना, अभिभावक का खाता खुलवाना।आगे कहा कि अभिभावक के सीधे खाते मे डीबीटी के माध्यम से पैसा जाता है। यदि अभिभावक ड्रेस नही खरीद रहे हैं तो उसमे शिक्षको को दोषी बना कर उनका वेतन अवरुद्ध करना ये किस तरह का न्याय है? एमडीएम की व्यवस्था 80झ् विद्यालयों मे ग्राम प्रधान के हाथों मे है। उसके बाद भी उसमे अध्यापक को मोहरा बनाया जाता है। साफ सफाई की व्यवस्था सफाईकर्मी की है, उसमे भी अध्यापक को दोषी बना कर अध्यापक का वेतन अवरुद्ध करना विभाग की परिपाटी बन गयी है साथ ही अवरुद्ध वेतन के बहाल कराने के लिए मोटी रकम अध्यापको से ली जाती है, जिससे अध्यापक तंग आ चुका है। उन्होंने विभाग को चेतावनी देते हुए कहा कि अगर अध्यापक की समस्याओं का समय रहते निदान नही हुआ तो अध्यापक सड़क से लेकर संसद तक धरना देने के लिए मजबूर होगा और इसकी समस्त जिम्मेदारी प्रशासन एवं राजनीतिक रहनुमाओ की होगी।ज्ञापन कार्य क्रम मे जिला उपाध्यक्ष अखिलेश सिंह, सूर्य प्रकाश सिंह, अनिल सिंह, कौसर जहां सिद्दकी, राजेश बैस, सुनील कांत माथुर, संतोष सिंह, नीलम गिरी, संजय मौर्या, कृष्ण कुमार, हिमांशु मिश्रा, मयंक दुबे, दिनेश मिश्रा, दिवाकर तिवारी, राम लाल सिंह, वर्तिका सिंह,अखिलेश सिंह राजीव कुमार, मिथिलेश सहित सैकड़ो शिक्षक उपस्थिति रहे।

24 घंटे में मिल जाएगी जानकारी, सबसे बड़े बैंक को ढाल बना रही मोदी सरकार

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। कांग्रेस ने भारतीय स्टेट बैंक द्वारा चुनावी बॉन्ड विवरण का

खुलासा करने के लिए अधिक समय मांगने के लिए सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर करने पर केंद्र पर हमला बोला। कांग्रेस ने आरोप लगाया कि मोदी सरकार अपने संदिग्ध लेनदेन को छिपाने के लिए देश के सबसे बड़े बैंक को ढाल के रूप में इस्तेमाल कर रही है।कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खरगे ने कहा कि चुनावी बॉन्ड योजना को लेकर कांग्रेस का मानना है कि यह अपारदर्शी अलोकतांत्रिक और समान अवसर को नष्ट करने वाली है। दरअसल मुख्य न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली पांच-न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्देश दिया कि एसबीआई को राजनीतिक दलों द्वारा भुनाए गए प्रत्येक चुनावी बांड के विवरण का खुलासा करना होगा।भारतीय स्टेट बैंक ने सोमवार को सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर राजनीतिक दलों द्वारा भुनाए गए प्रत्येक चुनावी बॉन्ड के विवरण का खुलासा करने के लिए 30 जून तक की मोहलत मांगी है। पिछले महीने अपने फैसले में, शीर्ष अदालत ने एसबीआई को 6 मार्च तक चुनाव पैनल को विवरण प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था।कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खरगे ने कहा कि चुनावी बॉन्ड योजना को लेकर कांग्रेस का मानना है कि यह अपारदर्शी, अलोकतांत्रिक और समान अवसर को नष्ट करने वाली है।

हाथ में तलवार लेकर पीएम मोदी को दी जान से मारने की धमकी

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
कर्नाटक। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को जान से मारने की धमकी देने के आरोप में एक व्यक्ति के खिलाफ कर्नाटक के यादगिरी के प्राथमिकी दर्ज की गई है। फिलहाल, आरोपी की तलाश करने के लिए पुलिस इलाके के अलग-अलग हिस्सों में बंट गई है।प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को जान से मारने की धमकी देने वाले आरोपी के खिलाफ केस दर्ज किया गया है। आरोपी पर यादगिरी के सुरपुर पुलिस स्टेशन में भारतीय दंड संहिता की धारा 505(1)(ं) 25(1)(ं) और शस्त्र अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया है। फिलहाल पुलिस आरोपी की तलाश में जुट गई है।यादगिरी पुलिस ने कहा कि सोशल मीडिया पर एक वीडियो पोस्ट करने के लिए मोहम्मद रसूल कद्दारे नाम के व्यक्ति के खिलाफ

मामला दर्ज किया गया था। दरअसल, इस आरोपी ने कांग्रेस सरकार आने पर पीएम नरेंद्र मोदी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को जान से मारने की धमकी दी थी।आरोपी पर यादगिरी के सुरपुर पुलिस स्टेशन में भारतीय दंड संहिता की धारा 505(1), 25(1) और शस्त्र अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया है। पुलिस ने कहा, अपने मोबाइल फोन पर वीडियो रिकॉर्ड कर के रसूल ने प्रधानमंत्री मोदी और यूपी के सीएम योगी आदित्यनाथ को अस्पष्ट शब्दों में गाली दी।

हिजबुल्लाह के आतंकवादी हमले में एक भारतीय की मौत

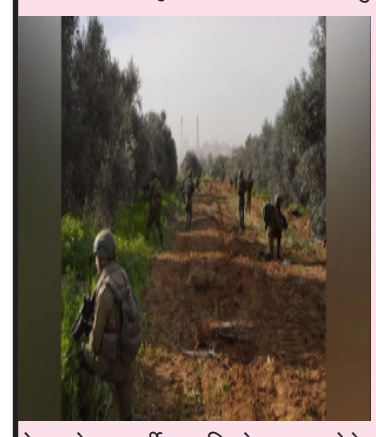

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। सोमवार को उत्तरी इजरायल में लेबनान की सीमा पर हिजबुल्लाह के आतंकवादी हमले में एक भारतीय नागरिक की मौत हो गई। वहीं, दो अन्य भारतीय घायल हो गए। मृतक की पहचान

केरल के 31 वर्षीय व्यक्ति के रूप में की गई है। भारत में इजरायली दूतावास ने मंगलवार को इसकी पुष्टि की।उत्तरी इजरायल में लेबनान की सीमा पर हिजबुल्लाह के आतंकवादी हमले में एक भारतीय नागरिक की मौत हो गई। भारत में इजरायली दूतावास ने मंगलवार को इसकी पुष्टि की। मृतक की पहचान केरल के कोल्लम जिले के 31 वर्षीय निबिन मैक्सवेल के रूप में हुई है । रिपोर्टों से यह भी पुष्टि हुई है कि अन्य दो घायल भी केरल के हैं। निबिन मैक्सवेल दो महीने पहले इजरायल आए थे।भारत में इजराइल के दूतावास ने ट्वीट कर बताया 'हम कल दोपहर उत्तरी मार्गालियोट गांव में एक बाग की खेती कर रहे शांतिपूर्ण कृषि श्रमिकों पर शिया आतंकवादी संगठन हिजबुल्लाह द्वारा किए गए कायरतापूर्ण आतंकवादी हमले के कारण एक भारतीय नागरिक की मौत और दो अन्य के घायल होने से बहुत स्तब्ध और दुखी हैं। इजरायली मेडिकल संस्थान पूरी तरह से घायलों की सेवा में हैं जिनका इलाज हमारे सबसे अच्छे मेडिकल स्टाफ द्वारा किया जा रहा है।'

स्वीडन की कंपनी ने भारत में हथियार बनाने की फैक्ट्री का शुरू किया निर्माण

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। स्वीडन की प्रमुख रक्षा कंपनी साब ने सोमवार को कहा कि वह अगले साल तक हरियाणा

स्थित संयंत्र में प्रसिद्ध कार्ल-गुस्ताफ एम-4 हथियार प्रणालियों का उत्पादन शुरू कर देगी। कंपनी को इस बड़ी परियोजना के लिए 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की मंजूरी मिली है।सरकार ने पिछले साल अक्टूबर में कार्ल-गुस्ताफ एम4 विनिर्माण परियोजना को मंजूरी दी थी। इसके साथ ही साब 100 प्रतिशत एफडीआई की मंजूरी पाने वाली भारत की पहले विदेशी रक्षा कंपनी बन गई है। कंपनी को इस बड़ी परियोजना के लिए 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की मंजूरी मिली है। यह स्वीडन के बाहर कार्ल-गुस्ताफ एम4 के लिए साब का पहला विनिर्माण संयंत्र है।सरकार ने पिछले साल अक्टूबर में कार्ल-गुस्ताफ एम4 विनिर्माण परियोजना को मंजूरी दी थी। इसके साथ ही साब 100 प्रतिशत एफडीआई की मंजूरी पाने वाली भारत की पहले विदेशी रक्षा कंपनी बन गई।

दिल्ली सरकार की याचिका पर सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र और उपराज्यपाल से मांगा जवाब

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। सुप्रीम कोर्ट ने सरकारी वकीलों की नियुक्ति की शक्ति उपराज्यपाल को सौंपने के

केंद्र के फैसले को चुनौती देने वाली दिल्ली सरकार की याचिका पर सोमवार को केंद्र सरकार और उपराज्यपाल से जवाब मांगा है।सुप्रीम कोर्ट ने सरकारी वकीलों की नियुक्ति की शक्ति उपराज्यपाल को सौंपने के केंद्र के फैसले को चुनौती देने वाली दिल्ली सरकार की याचिका पर सोमवार को केंद्र और उपराज्यपाल से जवाब मांगा है। दिल्ली सरकार ने केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा जारी 2017 के ज्ञापन और 16 फरवरी को दिल्ली के उपराज्यपाल कार्यालय द्वारा पारित एक आदेश को चुनौती दी है।जस्टिस संजीव खन्ना और जस्टिस दीपांकर दत्ता की पीठ ने केंद्र सरकार और उपराज्यपाल को नोटिस जारी किया है। सुप्रीम कोर्ट में दिल्ली सरकार ने केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा जारी 2017 के ज्ञापन और 16 फरवरी को दिल्ली के उपराज्यपाल कार्यालय द्वारा पारित एक आदेश को चुनौती दी है।याचिका में मांग की गई है कि दिल्ली की निर्वाचित सरकार को वकील की नियुक्ति पर निर्णय लेने का अधिकार मिलना चाहिए।

बेंगलुरु जेल में कैदियों को कट्टरपंथी बनाने के मामले में एन आई ए का बड़ा एक्शन

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। बेंगलुरु जेल में कैदियों को कट्टरपंथी बनाने के मामले में एनआईए सात राज्यों में 17 स्थानों पर तलाशी की कार्रवाई कर रही

है। आज सुबह से बेंगलुरु और तमिलनाडु समेत अन्य राज्यों में छापेमारी चल रही है। यह छापे आतंकी साजिश में शामिल संदिग्धों से जुड़े हैं।बेंगलुरु जेल में कैदियों को कट्टरपंथी बनाने के मामले में एनआईए सात राज्यों में 17 स्थानों पर तलाशी की कार्रवाई कर रही है। बेंगलुरु सिटी पुलिस द्वारा 18 जुलाई 2023 को सात आरोपी व्यक्तियों के कब्जे से हथियार गोला-बारूद हथगोले और वॉकी-टॉकी की जब्ती के बाद दर्ज किया गया था। बरामदगी तब की गई जब सातों लोग एक आरोपी के घर में एकत्र हुए थे।इस साल 12 जनवरी को राष्ट्रीय जांच एजेंसी ने बेंगलुरु लश्कर-ए-तैयबा (एलईटी) जेल कट्टरपंथ और 'फिदायीन' (आत्मघाती) हमले की साजिश रचने के मामले में एक आजीवन कारावास की सजा पाने वाले और दो भगोड़ों सहित आठ लोगों पर आरोप पत्र दायर किया।आरोपपत्र में शामिल आरोपियों में केरल के कन्नूर जिले का टी नसीर भी शामिल है, जो 2013 से बेंगलुरु की सेंट्रल जेल में आजीवन कारावास की सजा काट रहा है। वहीं जुनैद अहमद उर्फ जेडी और सलमान खान के विदेश भाग जाने का संदेह है।

ईडा ने महुआ मोइत्राफिर जारी किया समन

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)
नई दिल्ली। ईडी ने तृणमूल कांग्रेस की नेता और पूर्व लोकसभा सदस्य महुआ मोइत्रा को फेमा उल्लंघन

मामले में नया समन जारी कर 11 मार्च को पूछताछ के लिए बुलाया है।ईडी ने तृणमूल कांग्रेस की नेता और पूर्व लोकसभा सदस्य महुआ मोइत्रा को फेमा उल्लंघन मामले में नया समन जारी कर 11 मार्च को पूछताछ के लिए बुलाया है। ईडी मोइत्रा से पूछताछ कर विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) के प्रविधानों के तहत उनका बयान दर्ज करना चाहती है। बता दें कि मोइत्रा पर राष्ट्रीय सुरक्षा से समझौता करने का आरोप है।मोइत्रा (49) ने पिछले महीने एजेंसी को एक पत्र भेजकर पेश होने में असमर्थता जताई थी और पूछताछ का सामना करने के लिए कुछ सप्ताह का समय मांगा था। ईडी मोइत्रा से पूछताछ कर विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) के प्रविधानों के तहत उनका बयान दर्ज करना चाहती है।

यामी गौतम की आर्टिकल-370 ने गड़ाई 100 करोड़ पर नजर, मंडे को ताबड़तोड़ हुई कमाई

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। यामी गौतम के लिए साल 2024 की शुरुआत काफी अच्छी हुई। एक तरफ जहां उन्होंने अपनी प्रेगनेंसी की जानकारी फैंस के साथ साझा की, तो वहीं दूसरी तरफ उनकी पॉलिटिकल ड्रामा फिल्म 'आर्टिकल-370' को दर्शकों से वाहवाही मिलीकी पॉलिटिकल ड्रामा फिल्म 370 को सिनेमाघरों में रिलीज हुए दो हफ्ते पूरे हो चुके हैं और ये फिल्म अब तीसरी वीक में कदम रख चुकी है। दो हफ्तों में दें धिम पर हाफ सेंचुरी बनाने वाली इस फिल्म का मकसद अब 100 करोड़ कमाना है। यामी गौतम की फिल्म आर्टिकल 370 का सोमवार को बॉक्स ऑफिस पर कैसा हाल रहा चलिए जानते हैं।विद्युत् जामवाल की 'क्रैक' और शाहिद कपूर की 'तेरी बातों में उलझा जिया' का बॉक्स ऑफिस से सफाया करने यामी गौतम की मूवी को दो हफ्ते पूरे हो चुके हैं।आर्टिकल-370 ने अब अपने तीसरे हफ्ते में कदम रख दिया है। घरेलू बॉक्स ऑफिस पर रविवार को 50 करोड़ से ज्यादा की कमाई करने वाली आर्टिकल-370 का सोमवार को कैसा हाल रहा चलिए जानते हैं।कश्मीर से आर्टिकल-370 हटाने की वजह को विस्तार से बताती हुई इस फिल्म की कहानी दर्शकों को खूब भा रही है, यही वजह है कि डोमेस्टिक बॉक्स ऑफिस पर भी कम बजट की ये फिल्म एक बेहतरीन कमाई कर रही है। यामी गौतम स्टारर 'आर्टिकल-370' के लिए संडे का दिन काफी अच्छा रहा और फिल्म ने 6 करोड़ से ज्यादा की कमाई की।हालांकि, अन्य फिल्मों की तरह वर्किंग डेज की वजह से आर्टिकल-370 की कमाई में भी गिरावट देखने को मिली, लेकिन अन्य फिल्मों के मुकाबले यामी की फिल्म घरेलू बॉक्स ऑफिस पर काफी अच्छी कमाई कर गयी। सैकनलिक.कॉम की रिपोर्ट्स के मुताबिक, इस मूवी ने सोमवार को बॉक्स ऑफिस पर लगभग 1.75 करोड़ का सिंगल डे पर बिजनेस किया है।दूसरे हफ्ते में ही आदित्य धर के निर्देशन में बनी पॉलिटिकल ड्रामा फिल्म आर्टिकल-370 ने हाफ सेंचुरी मार दी थी। अब यामी गौतम स्टारर ये फिल्म 100 करोड़ के क्लब में शामिल होने की तैयारी में है। इस फिल्म ने 11 दिनों में घरेलू बॉक्स ऑफिस पर 52.6 करोड़ तक का नेट कलेक्शन किया है।इंडिया में ग्रॉस अब तक ये फिल्म 60 करोड़ के आसपास पहुंच चुकी है। इंडिया के अलावा वर्ल्ड वाइड भी आर्टिकल-370 की रफ्तार काफी अच्छी है और मूवी ने 67 करोड़ कमा लिए हैं।

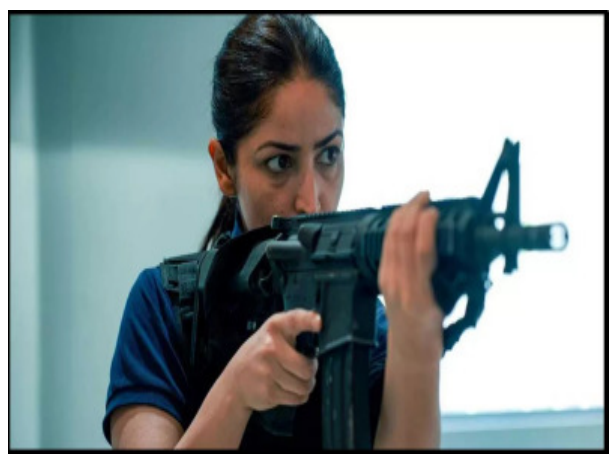

बिग बॉस 17 के ये दो कंटेस्टेंट्स एक- दूसरे को रियल लाइफ में कर रहे हैं डेट

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। सलमान खान का रियलिटी शो बिग बॉस 17 चर्चा से हटने का नाम नहीं ले रहा है। कभी कंटेस्टेंट्स की पार्टी तो, कभी इनके विवादित बयान चर्चा में बने हुए है। इस बीच शो के दो पॉपुलर कंटेस्टेंट्स की डेटिंग की खबर सामने आई है।बिग बॉस 17 एक बार फिर चर्चा में बना हुआ है। इस बार कंटेस्टेंट्स की पार्टी या विवाद नहीं बल्कि डेटिंग लोगों का ध्यान खींच रही है। बिग बॉस 17 के घर में कुछ कपल तो कुछ एक्स कपल नजर आए। हालांकि शो खत्म होते- होते इनके बीच की दूरियां भी कम हो गई। वहीं अब दो पॉपुलर कंटेस्टेंट्स के डेटिंग की खबर सामने आई है।बिग बॉस 17 के घर कई कपल देखने को मिले। इनमें कुछ शादीशुदा तो, कुछ डेटिंग वाली जोड़ियां शामिल थी। वहीं, अब बिग बॉस 17 के दोस्त की नजदीकियां प्यार में बदल गई है।बिग बॉस 17 खत्म होने के बाद ज्यादातर कंटेस्टेंट्स अपने अपकमिंग प्रोजेक्ट्स को लेकर चर्चा में बने हुए है। इनमें सबसे ज्यादा ध्यान अभिषेक कुमार खींच रहे हैं। एक्टर का गुड लुक्स और चार्मिंग पर्सनैलिटी उनके फैंस को बेहद पसंद है। बिग बॉस में अभिषेक कुमार एक दिल टूटे आशिक की तरह नजर आए थे। हालांकि, शो से बाहर आने के बाद उनकी पर्सनल लाइफ पटरी पर लौट आई है।

खा तेनु पहली पहली बार इमोशनल हुई राधिका मर्चेंट ने अनंत के लिए दी स्पेशल परफॉर्मेंस

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। गुजरात के जामनगर में चले अनंत अंबानी और राधिका मर्चेंट की लैविश प्री वेडिंग सेरेमनी का क्रेज अब भी लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा है। फंक्शन खत्म हो चुके हैं, मगर यहां के फोटो और वीडियो अब भी सोशल मीडिया पर ट्रेंड हो रहे। प्री वेडिंग सेरेमनी की कुछ अनदेखी झलक हर रोज सामने आ रही है। इस कड़ी में राधिका मर्चेंट का वो वीडियो सामने आया है, जब उन्होंने स्टेज पर एंट्री ली और अनंत के लिए डांस भी किया।की प्री वेडिंग सेरेमनी का जशन पूरी दुनिया ने देखा। तीन दिन तक चले इस ग्रैंड इवेंट में ढेर सारी परफॉर्मेंस हुई। पॉप सिंगर रिहाना से लेकर बॉलीवुड स्टार्स तक ने अपनी-अपनी परफॉर्मेंस दी। लेकिन इन सबके बीच लाइमलाइट चुराई राधिका ने जिन्होंने स्टेज पर एंट्री लेते हुए अनंत अंबानी के लिए स्पेशल परफॉर्मेंस दी।राधिका मर्चेंट और अनंत अंबानी की प्री वेडिंग सेरेमनी का आयोजन किसी सपने से कम नहीं था। सितारों से सजी इस तीन दिन की शाम में खूब धूम धड़ाका हुआ। हॉलीवुड से लेकर बॉलीवुड तक के सितारों ने अपनी परफॉर्मेंस से रंग जमाया। यहां तक कि राधिका और अनंत ने भी एक दूसरे के साथ डांस किया। इन सबके बीच अंबानी परिवार की होने वाली बहू का एक अनदेखा वीडियो सामने आया है, जिसमें वह भावुक होकर स्टेज पर एंट्री लेती नजर आ रही हैं। राधिके ने स्टेज पर खास अंदाज में एंट्री ली। उन्होंने अपने मंगेतर अनंत के लिए फिल्म 'कभी खुशी कभी गम' का 'देखा तेनु पहली पहली बार वे' गाना गाया और हल्का-फुल्का डांस किया। इस दौरान राधिका की आंखों में आंसू थे। परफॉर्म करते-करते राधिका जैसे ही स्टेज पर पहुंचीं, अनंत ने उन्हें गले लगा लिया। कपल का यह क्यूट वीडियो काफी पसंद भी किया गया।प्री वेडिंग सेरेमनी 1 मार्च से शुरू होकर 3 मार्च तक चली थी। इस दौरान यहां एंटरटेनमेंट वर्ल्ड के अलावा बिजनेस और स्पोर्ट्स जगत की कई नामी हस्तियां शामिल हुईं। सेरेमनी में महेंद्र सिंह धोनी, शाह रुख खान, डीजे ब्रावो, बिल गेट्स, गौतम अडानी सहित कई शख्सियतें शुमार थीं।

रणवीर सिंह की राह पर चले सलमान खान एयरपोर्ट लुक देख छूटी यूजर्स की हंसी

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। सलमान खान हिंदी सिनेमा के दिग्गज सितारों में से एक हैं। सल्लू मियां के स्वैग के आगे बड़े-बड़े सितारे भी फेल है। हैंडसम हंक किसी न किसी वजह से लाइमलाइट में आ जाते हैं। हाल ही में, वह राधिका मर्चेंट और अनंत अंबानी के प्री-वेडिंग फंक्शन की वजह से चर्चा में थे। अब उनका नया वीडियो सोशल मीडिया पर सामने आया है। हिंदी सिनेमा के भाईजान का स्वैग सबसे हटकर है। अनंत अंबानी और राधिका मर्चेंट की पार्टी में धमाल मचाने के बाद सोमवार को अभिनेता जामनगर से मुंबई की ओर रवाना हुए। एयरपोर्ट पर भाईजान व लुक ने सभी का ध्यान खींचा। वह अपनी भांजी के साथ जामनगर एयरपोर्ट पर दिखाई दिए। लोग उनके लुक को लेकर मजाक उड़ा रहे हैं।राधिका और अनंत की प्री-वेडिंग पार्टी खत्म होने के बाद सोमवार को सलमान खान जामनगर से मुंबई के लिए रवाना हुए। वह अपनी भांजी अलीजेह अगिन्होत्री के साथ जामनगर एयरपोर्ट पर स्पॉट हुए। अभिनेता ने अपनी भांजी के साथ पैपराजी को पोज दिए। इस दौरान अभिनेता के लुक ने सभी का ध्यान खींच लिया।एयरपोर्ट के लिए सलमान खान स्काई ब्लू कलर की पैंट और शर्ट में दिखाई दिए। जबकि उनकी भांजी अलीजेह कैजुअल लुक में नजर आईं। भांजी का लुक तो ठीक था, लेकिन सल्लू मियां का अंदाज देख यूजर्स की हंसी छूट गई। लोग वीडियो पर तरह-तरह के रिएक्शन दे रहे हैं। किसी ने अभिनेता को ऑटो ड्राइवर बुलाया तो किसी ने उन्हें कुली कहा। एक यूजर ने लिखा, कुली लग रहा है।एक ने इसे हॉस्पिटल ड्रेस बताया।

करीना कपूर और दिलजीत दोसांझ का 'नैना' गाना इस दिन होगा रिलीज

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। रिया कपूर और एकता कपूर निर्मित फिल्म क्रू इन दिनों चर्चा में है। हिंदी सिनेमा की तीन खूबसूरत अभिनेत्रियां करीना कपूर खान , तब्बू और कृति सेनन एक साथ पर्दे पर अपना जलवा दिखाएंगी। करीना कपूर कृति सेनन और तब्बू स्टारर फिल्म पैं पर्दे पर धमाल मचाने के लिए एकदम तैयार है। टीजर रिलीज के बाद मेकर्स ने फिल्म के पहले गाने का टीजर भी आउट कर दिया है। गाना कब रिलीज होगा इसकी तारीख भी सामने आ गई है। इस गाने में करीना कृति और तब्बू के साथ-साथ दिलजीत का भी स्वैग दिखेगा।क्रू को रिलीज होने में अभी थोड़ा समय है। कुछ दिन पहले फिल्म का मच अवेटेड टीजर रिलीज हुआ था, जिसने लोगों को दीवाना बना दिया था। करीना, कृति और तब्बू के ग्लैमर से फैंस मंत्रमुग्ध हो गए थे। अब फिल्म का पहला गाना रिलीज होने वाला है।करीना, तब्बू और कृति स्टारर फिल्म में दिलजीत दोसांझ का अहम किरदार है। फिल्म में उनका करीना कपूर के साथ रोमांटिक गाना रिलीज होने वाला है। कुछ दिन पहले दिलजीत ने करीना के साथ रोमांटिक फोटोज शेयर कर हिंट भी दिया था। अब गाने का टीजर भी रिलीज हो गया है। बेबो ने इंस्टाग्राम अकाउंट पर 'नैना' गान का टीजर शेयर किया है।सामने आए 'नैना' गाने के टीजर में नियॉन कलर की ड्रेस में करीना कपूर का कातिलाना अवतार देखने को मिल रहा है।

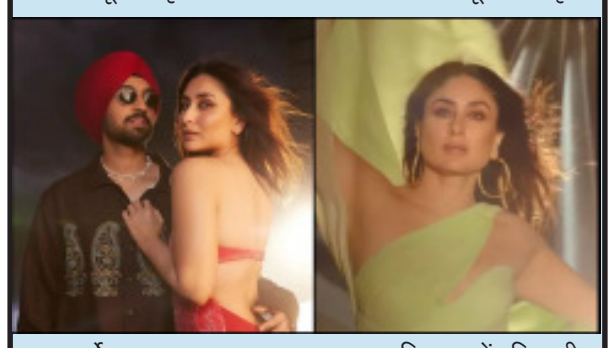

इस ओटीटी प्लेटफॉर्म पर रिलीज हुई केट विंसलेट की पॉलिटिकल सैटायर मिनी सीरीज 'द रिजीम'

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। टाइटैनिक फेम एक्ट्रेस केट विंसलेट की पॉलिटिकल सैटायर मिनी सीरीज द रिजीम अमेरिका में मैक्स और एचबीओ पर 3 मार्च से रिलीज हो गई है।ओटीटी पर स्ट्रीम हो गया है। इस पॉलिटिकल सैटायर शो में केट विंसलेट लीड रोल में हैं जो एक काल्पनिक राज्य की चांसलर का है। शो टीवी में भी लम्बे समय तक काम करती रही हैं। हालांकि दुनियाभर में उन्हें पहचान टाइटैनिक फिल्म से मिली थी जिसमें उन्होंने रोज का किरदार निभाया था। द रिजीम में कई जाने-माने कलाकार अहम भूमिकाओं में हैं।केट के फैंस काफी समय से इस सीरीज का इंतजार कर रहे थे। विल ट्रैसी ने शो को क्रिएट किया है, जबकि स्टीफन फ्रीअर्स और जेसिका हॉब्स ने निर्देशन किया है। शो में केट के अलावा एंड्रिया राइजबरो, मैथियास स्कोनर्ट्स, मार्था पिम्पटन और ह्यू ग्रांट अहम भूमिकाओं में हैं। द रजीम में केट का किरदार एलेना वर्नहाम पूर्व फिजीशियन और काल्पनिक सेंट्रल यूरोपियन राजतंत्र की चांसलर है। यह वीकली शो है। हर रविवार नया एपिसोड स्ट्रीम किया जाएगा।मैथियास हरबर्ट जुबाक के रोल में हैं, जो एलेना का विश्वासपात्र सोल्जर है। ह्यू ग्रांट ने एडवर्ड केपलिंगर की भूमिका निभाई है, जो निर्वासित चांसलर है। उसे सात साल पहले सत्ता से बेधकल कर दिया गया था। गिलोमे गैलियन एलेना के पति निकोलस वर्नहाम के किरदार में हैं। निकोलस को शक है कि उसकी पतनी का हरबर्ट के साथ अफेयर चल रहा है।पहला एपिसोड विक्ट्री डे 3 मार्च को स्ट्रीम किया जा रहा है। 10 मार्च को दूसरा एपिसोड द फाउंडिंग आएगा। 17 मार्च को तीसरा एपिसोड हीरोज बैंक्वेट आएगा। इसके बाद 24 मार्च, 31 मार्च और 7 अप्रैल को एपिसोड्स आएंगे। इनकी डिटेल्स अभी जारी नहीं की गई हैं।टाइटैनिक फिल्म से दुनियाभर में छाईं केट विंसलेट की पहली फिल्मों के साथ टीवी में भी काम करती रही हैं। 1991 में उन्होंने 6 एपिसोड्स की सीरीज डार्क सीजन से टीवी डेब्यू किया था। 1993 तक केट निरंतर टीवी पर काम करती रहीं। 2011 में केट मिनी सीरीज मिलड्रेट पियर्स में नजर आई थीं।फिल्मों की बात करें तो केट की पिछली फिल्म ली है, जो 2023 में रिलीज हुई थी। यह ब्रिटिश बायोग्राफिकल फिल्म है, जिसमें केट ने ली मिलर का लीड रोल निभाया था। अवतार 3 उनकी अगली फिल्म है।

अंबानी की पार्टी में रजनीकांत की इस हरकत पर भड़के फैंस, हाउस हेल्पर के साथ किया ये बर्ताव नहीं आया पसंद

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। अनंत अंबानी और राधिका मर्चेंट की प्री-वेडिंग पार्टी में बॉलीवुड के साथ कई साउथ स्टार्स भी पहुंचे। इनमें थलाइवा रजनीकांत भी पत्नी लता और बेटी ऐश्वर्या के साथ पार्टी की रौनक बढ़ाने पहुंचे। हालांकि, रजनीकांत की सोशल मीडिया पर फजीहत हो रही है, क्योंकि हाउस हेल्पर के साथ किया गया उनका बर्ताव कई फैंस को पसंद नहीं आया।हाल ही मे हुए अनंत अंबाना और राधिका मर्चेंट के प्री-वेडिंग फंक्शन जामनगर में तीन दिनों तक चले। बॉलीवुड के कई बड़े स्टार्स ने पार्टी की रौनक बढ़ाई। इनमें कुछ साउथ एक्टर का नाम भी शामिल है। थलाइवा रजनीकांत भी परिवार के साथ 1 से लेकर 3 मार्च तक अनंत और राधिका के इवेंट में शामिल हुए। पार्टी से अब उनका एक वायरल हो रहा है।रजनीकांत का सोशल मीडिया पर एक वीडियो वायरल हो रहा है, जिसमें एक्टर ने पब्लिक के सामने अपनी हाउस हेल्पर के साथ कुछ ऐसा किया कि उनके फैंस भड़क गए।अनंत अंबानी और राधिका मर्चेंट के प्री-वेडिंग फंक्शन गुजरात के जामनगर में तीन दिनों तक चले। गेस्ट लिस्ट में शामिल रजनीकांत भी परिवार के साथ 1 से लेकर 3 मार्च तक इवेंट में शामिल हुए। पार्टी से उनके कई वीडियो भी सोशल मीडिया पर वायरल हुए, लेकिन सबसे ध्यान सिर्फ एक ने खींचा।अनंत अंबानी और राधिका मर्चेंट के प्री-वेडिंग फंक्शन गुजरात के जामनगर में तीन दिनों तक चले। गेस्ट लिस्ट में शामिल

शाह रुख के मजाक पर भड़कीं राम चरण की मेकअप आर्टिस्ट, रजनीकांत हुए ट्रोल

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। अनंत अंबानी और राधिका मर्चेंट के जामनगर में हुए प्री-वेडिंग फंक्शन में सितारों का मेला लगा इस दौरान शाह रुख खान-सलमान खान और आमिर ने राम चरण और जूनियर एनटीआर के गाने 'नाटू-नाटू' पर डांस स्टेप्स दिखाए।2024 अनंत अंबानी-राधिका मर्चेंट के प्री-वेडिंग फंक्शन में शाह रुख खान ने जिस तरह से राम चरण को मंच पर बुलाया उससे साउथ सुपरस्टार की मेकअप आर्टिस्ट गुस्से से भर उठी हैं और उन्होंने एक लंबा चौड़ा पोस्ट शेयर किया है। इसके अलावा रजनीकांत को अपनी हाउस हेल्प का अनादर करने के लिए ट्रोलिंग झेलनी पड़ी है। -शाह रुख खान ने खुद राम चरण को मंच पर आने के लिए आमंत्रित किया।। लेकिन इस दौरान किंग खान ने मजाक में राम चरण को जिस तरह से बुलाया, वो बात साउथ सुपरस्टार की मेकअप आर्टिस्ट को काफी चुभी और वह इस फंक्शन से बीच में ही चली गयीं।इसके अलावा थालाईवा रजनीकांत का एक वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल हो रहा है, जिसमें अपने हाउस हेल्प के साथ किया व्यवहार लोगों को कतई पसंद नहीं आ रहा है। मनोरंजन की दुनिया में सुबह से और क्या कुछ खास रहा, यहां पर पढ़ें टॉप 5 न्यूज।

इमरान हाशमा ने कंगना रनोट को नेपोटिज्म के दावे पर दिया मुंहतोड़ जवाब

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। एक्टर इमरान हाशमी फिल्मी पर्दे पर लंबे समय तक सीरियल किसर बनकर लोगों का मनोरंजन करते रहे। बाद में उन्होंने दूसरे जॉनर की फिल्में करना भी शुरू किया और आज उनकी इमेज रोमांटिक हीरो के अलावा सीरियस और विलेन वाले रोल करने के लिए भी बन चुकी है। इमरान इन दिनों अपनी ओटीटी रिलीज 'शोटाइम' को लेकर चर्चा में हैं। बॉलीवुड के वर्सटाइल एक्टर इमरान हाशमी पिछले कुछ दिनों में किसी भी मुद्दे पर काफी वोकल हुए हैं। वह भट्ट कैंप का हिस्सा रहे हैं इसके बावजूद उनके हिस्से में अपने ही कुछ स्ट्रगल थे। टाइगर 3 में विलेन की शानदार परफॉर्मेंस देने के बाद इमरान अब शोटाइम में नजर आएंगे जो कि एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री की कुछ अंदर की बातें बताने वाला शो होगा।'शोटाइम' में इमरान हाशमी के साथ श्रिया सारन, महिमा मकवाना और मॉनी रॉय हैं। यह ग्लैमर वर्ल्ड की अंदरुनी कहानी को दिखाती वेब सीरीज होगी। इमरान ने इस शो का प्रमोशन शुरू कर दिया है। इस सिलसिले में उन्होंने बॉलीवुड में नेपोटिज्म पर कंगना रनोट के दावों पर अपनी बात रखी।इमरान ने कंगना के साथ 'गैंगस्टर' में काम किया था। यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सक्सेसफुल रही थी। यहीं से कंगना सफलता की सीढ़ियां चढ़ती चली गई थीं। एक्ट्रेस ने एक आउटसाइडर होकर फिल्म इंडस्ट्री में अपनी जगह बनाई। हालांकि, पिछले कुछ सालों में कंगना ने इंडस्ट्री में नेपोटिज्म को लेकर काफी कुछ कहा है। उन्होंने बॉलीवुड एक्टर्स के ड्रग्स लेने सहित कई राज खोले हैं। अब उनके दावों पर इमरान हाशमी ने जवाब दिया है। इमरान ने कहा कि एक आर्टिस्ट और रियल में भी कंगना बहुत अच्छी है।

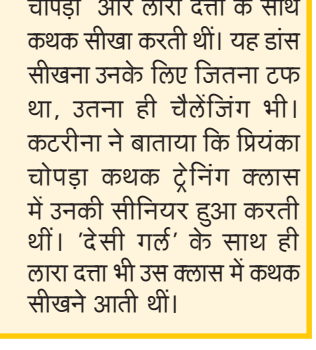

कटरीना कैफ की कथक क्लास की स्टार थीं प्रियंका चोपड़ा टाइगर 3 एक्ट्रेस ने पुराने दिनों को लेकर किया मजेदार खुलासा

(आधुनिक समाचार नेटवर्क)

नई दिल्ली। एक्ट्रेस कटरीना कैफ ने बॉलीवुड में लंबा सफर तय किया है। नॉन फिल्मी और नॉन हिंदी बैकग्राउंड से होने के बावजूद वह आज शोबिज इंडस्ट्री की न सिर्फ टॉप क्लास एक्ट्रेस हैं, बल्कि बेस्ट डांसर्स में भी उनकी गिनती होती है। सफलता के शिखर तक पहुंचना उनके लिए इतना आसान नहीं था। फिल्म इंडस्ट्री में पांव जमाने के लिए कटरीना ने जी तोड़ मेहनत की।कटरीना कैफ बॉलीवुड की टॉप क्लास एक्ट्रेस मानी जाती हैं। उनकी एक्टिंग के साथ ही डांस भी लोगों को काफी पसंद आता है। कटरीना नॉन हिंदी बैकग्राउंड से हैं। ऐसे में करियर की शुरुआत में उन्हें हिंदी बोलने में काफी परेशानी होती थी। लेकिन अपनी डिक्शन के लिए उन्होंने ढेरों मेहनत की। इसी के साथ एक्ट्रेस ने अपनी डांसिंग स्किल्स को भी शार्प किया।हाल ही में कटरीना ने अपने संघर्ष के दिनों का खुलासा किया। टाइम्स ऑफ इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार, कटरीना कभी प्रियंका चोपड़ा और लारा दत्ता के साथ कथक सीखा करती थीं। यह डांस सीखना उनके लिए जितना टफ था, उतना ही चैलेंजिंग भी। कटरीना ने बाताया कि प्रियंका चोपड़ा कथक ट्रेनिंग क्लास में उनकी सीनियर हुआ करती थीं। 'देसी गर्ल' के साथ ही लारा दत्ता भी उस क्लास में कथक सीखने आती थीं।

स्वत्वाधिकारी एवं मुद्रक डा. दीपक अरोरा द्वारा श्री आधुनिक प्रिन्टर्स एण्ड पैकेजर्स प्रा.लि. 1-मिर्जापुर रोड नैनी प्रयागराज उ.प्र. 211008 से मुद्रित एवं आधुनिक समाचार पब्लिसिंग हाउस सी 41 यूपीएसआईडीसी नैनी प्रयागराज 211010 (उ.प्र.) से प्रकाशित

सम्पादक/प्रकाशक
डा. पुनीत अरोरा
मो0न0 09415608710
RNI No. UPHIN/2015/63398

website:www.adhuniksamachar.com

नोटः- इस समाचार पत्र में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी तथा इनसे उत्पन्न समस्त विवाद इलाहाबाद न्यायालय के अधीन ही होगे।